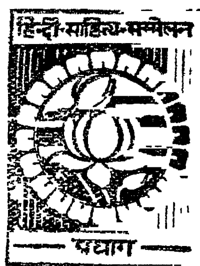
महाकवि हर्ष कृत

नागानन्द

अनुवादक

श्री गंगाधर इन्दूरकर साहित्यरत्न, साहित्य शास्त्री



२०२३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

प्रथम संस्करण १००० मूल्य ॥।=

प्रकाशकीय

संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रन्थों तथा पुराणों के हिन्दी अनुवाद की ओर सम्मेलन का ध्यान बहुत पहले से ही रहा है। इसके लिए पिछले चार वर्षों से एक स्थायी अनुवादक भी रखे गए हैं, जिन्होंने मत्स्यपुराण तथा वायुपुराण का अनुवाद समाप्त कर दिया है। सुप्रसिद्ध माघ कवि के शिशुपालवध तथा मम्मट के काव्यप्रकाश का अनुवाद भी सम्मेलन द्वारा प्रकाशित हो चुका है। संस्कृत के श्रेष्ठ नाटकों के अनुवाद की योजना भी सम्मेलन की दृष्टि मे थी। श्री गगाधर इन्दूरकर द्वारा अनूदित संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटककार हर्ष कृत रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द को सम्मेलन उसी दृष्टि से प्रकाशित कर रहा है। आशा है, हिन्दी पाठकों को पसन्द आएँगे।

इन अनुवादों की पाण्डुलिपियों को डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए० डी० लिट्० तथा पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, एम० ए० ने देखने का कष्ट कर पसन्द किया है, एतदर्थ हम उनका आभार मानते है।

श्रीमान् बड़ौदा नरेश स्वर्गीय महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने बबई के सम्मेलन मे स्वय उपस्थित होकर जो पॉच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से सम्मेलन इस 'सुलभ-साहित्य-माला' के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस माला मे अनेक सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रंथन हो चुका है और हमें आशा है कि उनके समान ही श्रीहर्ष के नाटकों के इन अनुवादो का भी हिंदी जगत् स्वागत करेगा।

साहित्य मन्त्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

सौर मार्गशीर्ष २०, २००३

नागानन्द

—:o:—

प्रथम अंक

—※—

नान्दी

"ध्यान करने के बहाने से (तुम) किस (कामिनी) का चिन्तन कर रहे हो ? कामदेव के बाणों से व्याकुल इन (हम) लोगों की ओर क्षणमात्र दृष्टिपात (तो) करो। रक्षक होने पर भी तुम हमारी रक्षा नहीं कर रहे हो। तुम झूठे ही दयालु कहलाते हो। तुमसे अधिक निर्दयी और दूसरा कौन है ?" इस प्रकार मार (काम) की स्त्रियों द्वारा ईर्ष्या के साथ कहे (फटकारे) गये जो समाधि में मग्न थे, आपकी रक्षा करें ॥१॥

और भी,

बोधि (पूर्ण ज्ञान) की प्राप्ति के लिये ध्यान करते हुए मुनीन्द्र (बुद्ध), जो धनुष तानकर (खड़े हुए) कामदेव के द्वारा देखे जा रहे थे, बड़े बड़े ढोल बजा कर ""अब जीत लिया" (और) वल्गना करने वाले कामदेव के सैनिक जिन्हें ताक रहे थे, भ्रूभग, कम्पन, जँभाई, मुसकुराती हुई तथा आँखें मटकाती हुई अप्सराएँ जिन्हें देख रही थी, शिर झुकाकर खड़े मुनि एव सिद्ध गण जिनका दर्शन कर रहे थे तथा आश्चर्य से रोमांचित देवराज इन्द्र देव जिनकी ओर देख रहे थे, (और) जो इतनी विघ्न बाधाएँ होने पर भी (समाधि से) टस से मस नहीं हुए, आपकी रक्षा करें ॥२॥

नान्दी के अनन्तर

सूत्रधार—बस, अधिक विस्तार से क्या लाभ ? आज इन्द्रोत्सव※

※संभवतः यह उत्सव भाद्रपद शु० १२ के दिन इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये किया जाता था। किन्ही पुस्तकों में चन्द्रोत्सव पाठ है।

के समय विभिन्न देशों से आये हुए तथा महाराज श्री हर्षदेव के चरण-कमलों की सेवाकर अपनी उपजीविका चलानेवाले राजाओं से सम्मान के साथ बुलाकर मैं ,कहा गया। "हमारे स्वामी श्री हर्षदेव ने अपूर्व कथानक तथा रचना (शैली) से अलंकृत नागानन्द नामक (एक) नाटक को, जिसका सम्बन्ध विद्याधर जातक से है, रचना की है। यह हम लोगों ने कर्ण परम्परा द्वारा सुना है, किन्तु अभी तक उसका (प्रत्यक्ष) अभिनय नहीं देखा है। अत समस्त प्रजा वर्ग के मन को सन्तुष्ट करने वाले उसी राजा के सम्मान के लिये तथा हम लोगो पर अनुग्रह करने के लिये, आज उसका यथाविधि अभिनय करें।" अतः अब नेपथ्य की रचना कर (राजाओं की) अभिलाषा पूर्ण करूँ। इधर उधर घूमकर तथा (दर्शकों की ओर) देखकर मुझे विश्वास है कि समस्त दर्शको के मन (मेरी ओर) खींच लिये गये है क्योंकि—

श्रीहर्ष (एक) निपुण कवि हैं। यह परिषद् भी गुणग्राहिणी है। ससार में बोधिसत्त्व का चरित्र परम मनोहर है और (इधर) हम लोग (भी) अभिनय कला में चतुर हैं। सम्प्रति (इनमें से) एक वस्तु भी इच्छितफल को दे सकती है फिर यहाँ (तो) यह गुणोंका सब समुदाय ही उपस्थित हुआ है ॥३॥

तब तक मैं घर चल कर अपनी घरवाली को बुलाकर संगीत (नृत्य तथा गीत) का आरम्भ करता हूँ। (इधर-उधर घूमकर तथा नेपथ्य की ओर देखकर) यही मेरा घर है। प्रवेश करूँ। (प्रवेश का अभिनय कर) आर्ये। इधर आओ।

ब्राह्मण-सेवक तथा मित्रों का हित करनेवाली, मेरे गृह रूपी तड़ाग की ,हँसिनी मृदुल स्वभाववाली, पर पुरुष रूपी चन्द्रों के लिये कमलिनी* के समान व्यवहार करने वाली, आर्ये! तुमसे कुछ काम है। यहाँ आओ ॥४॥

[प्रवेश कर तथा आँखो मे आँसू भरकर।]

नटी—आर्य! मैं अभागिनी आ गई। क्या आज्ञा है?

सूत्रधार—(नटी की ओर देखकर) आर्ये। नागानन्द नाटक के अभिनय के समय तुम अकारण ही यह क्यों रो रही हो?

---

* यह प्रसिद्ध है कि चन्द्रोदय होते ही कमलिनी मुरझा जाती है।

नटी—आर्य ! क्यों न रोकूँ। क्योंकि वृद्धावस्था के कारण वैराग्य को प्राप्त हुए पिता जी।(ससुर) तथा माता जी, तुम्हें परिवार का पालन पोषण करने में समर्थ समझकर तपोवन को चले गये हैं।

सूत्रधार—(विरक्ति के साथ) अरे ! मेरे माता-पिता मुझे छोड़-कर बन को कैसे चले गये ? इस समय मुझे क्या करना उचित होगा ? गुरुजनों की चरण शुश्रूषा का सुख छोडकर मैं घर पर कैसे बैठा रहूँगा ? क्योंकि

माता पिता की सेवा करने के लिये परम्परा गत ऐश्वर्य को छोड कर यह मैं भी (वैसे ही) बना जा रहा हूँ जैसे मूतवाहन (गया था) ॥५॥

[प्रस्थान]

आमुख

नायक तथा विदूषक प्रवेश ! नायक (वैराग्य से) मित्र आत्रेय !

मैं जानता हूँ कि (यह यौवन) राग (विषय वासना) का निवास स्थान है। मुझे विश्वास है कि यह नष्ट होने वाला है। कृत्याकृत्य का निर्णय करने में पराङ्मुख (असमर्थ) इसे कौन नहीं जानता ? (किन्तु) इस प्रकार इन्द्रियों के आधीन (अतःएव) निन्द्य भी यह यौवन इसी प्रकार माता पिता की सेवा करने हुए मेरा (यह यौवन) व्यतीत हो ॥६॥

विदूषक—(क्रोध से) मित्र ! क्या तुम अब तक इन जीवन्मृत वृद्धो के लिये इस प्रकार वनवास के दुख का अनुभव करते हुए ऊब नहीं गये हो ? अब भी गुरुजनो की शुश्रूषा करने के आग्रह से परावृत्त होकर इच्छित वस्तुओं के उपभोग के कारण रमणीय राज्य सुख का अनुभव करो।

नायक—मित्र ! तुमने ठीक नही कहा। क्योंकि

पिता के सम्मुख भूमि पर बैठा हुआ (कोई) जैसा शोभित होता है वैसा क्या सिहासन पर (बैठा हुआ) शोभित होता है ? पिता के पैर मीजते हुए (पुत्र) को जो सुख है ,वह क्या राजाओं के समूह में है। क्या त्रिभुवन का उपभोग करने मे यह सन्तोप है जो पिता के उच्छिष्ट में है ? पिता का त्याग किये हुए मुझे राज्य परिश्रम मात्र का कारण है। क्या उसमें कोई गुण है ? ॥७॥

विदूषक—(स्वगत) उसका गुरुजनों की रेखा करने में कितना अनुराग है ? (सोचकर) अस्तु । अब दूसरी तरह कहूँगा । (प्रकट) मित्र । मैं केवल राज्य के सुख को लक्ष्यकर नहीं कह रहा हूँ, तुम्हारा और भी तो कर्तव्य है ।

नायक—(मुसकुराता हुआ) मित्र ! जो करना था वह मैं कर चुका । देखो ।

*प्रकृतियों को न्याय के मार्ग मे लगा दिया है । सज्जनों को सुख से रखा है । और सम्बधियो को अपने समान बना लिया है । राज्य को रक्षा का भी प्रबन्ध है । याचकों को (उनके) मनोरथ से भी अधिक फल देने वाला कल्पद्रुम वृक्ष दे दिया है । इससे आगे और क्या कर्तव्य है, जो तुम्हारे मन में है, कहो ।।८।।

विदूषक—मित्र ! तुम्हारा शत्रु दुष्ट मतङ्ग अत्यन्त साहसी है । उसके निकट होने पर तुम्हारे प्रधान मत्रो के द्वारा भली भाँति शासित होता हुआ भी राज्य तुम्हारे बिना स्थिर रह सकता है, यह मुझे प्रतीत नहीं होता ।

नायक—धिक् मूर्ख ! तुम्हें सन्देह कि मतङ्ग (मेरा) राज्य छीन लेगा ?

विदूषक—हाँ ।

नायक—यदि ऐसा भी हो तो क्या हानि है । मैं अपने शरीर आदि सब की रखवाली दूसरों के लिये ही करता हूँ ।। इसका कारण तो पिता जी का अनुरोध है । (मेरे लिये) पिता जी का आज्ञा पालन ही श्रेयस्कर है । पिताजी ने मुझे आज्ञा दी है कि "वत्स जीमूतवाहन । अनेक दिनों तक उपयोग करने के कारण यह स्थान समिधाएँ कुश तथा फूलों से रहित हो गया है तथा (निरतर) उपयोग करने के कारण यहाँ कन्द मूल तथा नीवार की प्राप्ति कष्ट से होती है । अतः यहाँ से मलयपर्वत पर जाकर वहाँ कोई रहने योग्य आश्रम का अन्वेषण करो । आओ । मलयपर्वत पर ही चलें ।

विदूषक—जो आपकी आज्ञा । आइये ।

[दोनों परिक्रमा करते हैं ।]

---

*रज्य की सात प्रकृतियाँ होती है । (१) स्वामी (२) अमात्य (३) सुहृद्, (४) कोष (५) राष्ट्र (६) दुर्ग तथा (सैन्य) ।

विदूषक—(सामने देखकर) मित्र ! देखो। देखो। सरस घने तथा स्निग्ध चन्दन बन में लोट पोट करने के कारण प्रचुर परागकणो से युक्त तथा बिमल तटों से गिरने के कारण मानो जर्जरित हुए निर्झर से उड़ते हुए शीतल जलबिन्दुओ को धारण की हुई यह मलयाचल की वायु, प्रथम समागम के समय उत्कंठित होती हुई किसी स्त्री के आलिगन की तरह मार्ग के परिश्रम को दूर करती हुई प्रियमित्र (तुम) को रोमांचित कर रही है।

नायक—(ध्यान से देखकर आश्चर्य से) अरे ! हम लोग मलय पर्वत पर पहुँच गये। (चारों ओर देखकर) यह कितना रमणीय है। क्योंकि—

उन्मत्त हाथियो की कपोल भित्तियो के संघर्षण के कारण भग्न अतएव द्रवित होते हुए चन्दन वृक्षो युक्त, समुद्र की लहरों से टकराने के कारण प्रति ध्वनित होती हुई गुफाओ से युक्त तथा सिद्धांगनाओं के चलने से (उनके) चरणो के महावर के कारण लाल हुई मोतियों की की शिलाओं से युक्त (अतः एव) उपभोग के योग्य यह मलयाचल मेरे मन को कुछ अपूर्व उत्सुक बना रहा है ॥६॥

आओ ! यहाँ चढकर रहने योग्य आश्रम के लिये कोई स्थान देखें।

विदूषक—ऐसा ही करें। (आगे खड़े होकर) आप आइये।

[दोनो चढ़ने का अभिनय करते है।]

नायक—(दाहिनी आँख के फडकने की चेष्टा करता हुआ) (मेरी) दाहिनी आँख फड़क रही है। मुझे किसी और भी फल की अभिलाषा नही है। आँख फडकने के विषय में मुनियो का वचन असत्य नही होता। यह (आँख का फडकना। क्या कहेगा (दिखाएगा) ? ॥१०॥

विदूषक—मित्र ! यह शीघ्र हो, अवश्य होने वाले तुम्हारे किसी प्रिय कार्य को सूचित कर रहा है।

नायक—जैसा आपने कहा वैसा ही है।

विदूषक—(देखकर) मित्र ! देखो। देखो।

अत्यन्त घने तथा कोमल वृक्षों से सुशोभित, सुगंधित होमद्रव्य से मिश्रित (अत: सुगंधित) होकर निकलते हुए प्रचुर धुएँ से युक्त तथा

शान्त होकर सुखसे बैठे हुए श्वापद गणों से युक्त (यह) तपोवन-सा दिखाई दे रहा है।

नायक—ठीक पहिचाना! यह तपोवन ही है। क्योंकि

(यहाँ) वस्त्र के लिये पेड़ों की छाल की दया के कारण ही बहुत बड़ी नहीं काटी गई। टूटे फूटे तथा (जल स्वच्छ होने के कारण) दिखाई देते हुए जीर्ण कमंडलुओं से युक्त आकाश की तरह स्वच्छ झरने का जल भी (यहाँ) है। मुनियों के बालकों द्वारा कही कहीं मूंज की मेखलाएँ (कटि बन्धन) टूटने के पश्चात् फेंकी गई है। प्रतिदिन श्रवण करने के कारण शुक के द्वारा ये साम (वेद) के पद गाये जा रहे हैं ॥११॥

आओ! चलकर देखें।

[प्रवेश का अभिनय करते हैं। आश्चर्य से देखकर]

यह तपोवन, जहाँ प्रसन्न मुनिजनों के द्वारा सन्दिग्ध वेद वाक्यों का विस्तार से विचार किया जा रहा है, जहाँ पढ़ते हुए विद्यार्थीगण गीली समिधाएँ तोड़ रहे हैं तथा जहाँ तापस कन्यायें छोटे छोटे पौधो के थालों को (जल से) भर रही हैं, कितना प्रशान्त तथा मनोहर है। यहाँ ये (वृक्ष) भ्रमर गुञ्जार के व्याज से मानों (मेरा) स्वागत कर रहे हैं और और फलों के भार से झुकी हुई चोटियों के द्वारा मानो ये (मुझे) प्रणाम कर रहे हैं। पुष्प वृष्टी करके मानों मुझे अर्ध्य देते हुए (ये यहाँ के) वृक्ष भी अतिथियो का सत्कार करने में कैसे चतुर बताये गये हैं ॥१२॥

यह रहने योग्य तपोवन है। मैं समझता हूँ कि यहाँ रहकर हम लोगों को सुख प्राप्त होगा।

नायक—ये (वीणा की) तन्त्रियाँ कोमल उगलियों से बजाई जाने के कारण स्पष्ट नही बज रही हैं जिससे मेरा अनुमान है कि काकली प्रधान गीत गाया जा रहा है। (ऊँगली से सामने दिखाकर) इस मंदिर में परमेश्वर की आराधना करती हुई कोई देवांगना, स्त्री वीणा बजा रही है।

विदूषक—मित्र! आओ। हम लोग भी देव मंदिर देखें।

नायक—मित्र! तुमने ठीक कहा। देवगण वद्य हैं। (निकट जाते हुए सहसा रुककर) मित्र। कदाचित (कही) यह मनुष्य (स्त्रीं) हम

लोगो से न देखने योग्य न हो। अतः हम दोनों तमाल वृक्षों के पीछे छिपकर देखते हुए अवसर की प्रतीक्षा करें।

[वैसा करते हैं।]

भूमि पर बैठी हुई तथा वीणा बजाती हुई मलयवती तथा चेटी का प्रवेश।

नायिका—(गाती है।)

उत्फुल्ल कमल पुष्पो के तन्तुओं में लगे हुए पराग के समान गौर वर्ण वाली। भगवति गौरि। तुम्हारी कृपा से मेरी अभिलाषा सफल हो ॥१४॥

नायक—(कान लगाकर) यह गाना बजाना कितना सुन्दर है।

इस (गाने और बजाने) में (वीणा बजाने के) दसो प्रकार स्पष्ट हो गये हैं। तीनों प्रकार की यह लय जिसमें द्रुत, मध्य तथा लम्बित नामक विभाग है, यहाँ स्पष्ट है।

गोपुच्छादिक (समा, स्रोतावहा तथा गोपुच्छा) तीनो प्रकार की यदि (यहाँ) यथा स्थान स्थापित है तथा तत्व, ओघ, तथा अनुगत नामक तीनों वाद्य वादन के प्रकार प्रदर्शित किये गये हैं* ॥१५॥

चेटी—(प्रेम से) भर्तृदारिके! चिरकाल तक वीणाबजाती हुई तुम्हारी उंगलियाँ क्या थक नहीं गई हैं।

नायिका—(भर्त्सना करती हुई) देवी के सामने वीणा बजाती हुई मेरी उंगलियो को थकावट कैसी ?

चेटी—भर्तृदारिके! मैं कहती हूँ कि इस निष्करुण (देवी) के सामने बजाने से क्या लाभ ? जो (देवी) अब तक कुमारिकाओं के लिये कठिन नियम तथा उपवास के द्वारा आराधना करने वाली तुम पर अब भी दया नहीं दिखा रही है!

विदूषक—यह कन्या है। (इसे) हम लोग क्यों न देखें ?

नायक—क्या हानि है ? कन्याओ का दर्शन दोष रहित होता है ? किन्तु कदाचित यह हम लोगों को देखकर बचपन में स्वाभाविक

---

* इस श्लोक में संगीत के कतिपय पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर कवि ने अपने उस विषय के ज्ञान का परिचय दिया है।

वे शब्द हैं—व्यंजरधातु, द्रुत, मध्य, लम्बित, लय, गोपुच्छ, यति, तत्व ओघ तथा अनुगत।

लज्जा तथा साध्वस के कारण देर तक यहाँ न रुकेगी। अत इसी लता जाल के बीच से देखें।

विदूषक—ऐसा ही करें।

[दोनो देखते हैं]

विदूषक—(देखकर आश्चर्य से) मित्र ! देखो। देखो। अहा हा। आश्चर्य है। यह केवल वीणा (बजाने) के कौशल से ही (हमें) आनन्दित नही करती अपितु इस वीणा (बजाने) के कौशल के अनुरूप (अपने) रूप से भी (हमारी) आँखों को सन्तुष्ट कर रही है। यह कौन है। क्या देवी है ? अथवा (कोई) नाग कन्या है ? या (कोई) विद्याधर कन्या है ? अथवा किसी सिद्ध के वंश में उत्पन्न (कोई कन्या) है ?

नायक—(ललचाकर देखता हुआ) मित्र ! (यह) कौन है यह तो मैं नही समझ रहा हूँ किन्तु इतना (अवश्य) जानता हूँ कि –

यदि यह स्वर्ग की कोई रमणी है। तो इन्द्र के नेत्र सहस्र सफल हो गये। यदि कोई नाग कन्या है तो इसके मुख (चन्द्र) के वर्तमान होने पर पाताल चन्द्र से विरहित नही है। यदि यह कोई विद्याधरी है तो हमारी (विद्याधर) जाति समस्त जातियो को जीतने वाली है और यदि यह सिद्ध वश में उत्पन्न कोई है तो उसी (इसके जन्म के) समय से ही सिद्ध त्रिभुवन में प्रसिद्ध हुए हैं ॥१६॥

विदूषक—(नायक की ओर देखकर हर्ष से स्वगत्) सौभाग्य से बहुत दिनो क बाद यह कामदेव के चगुल में फँसा है। (अपने को दिखाकर तथा भोजन का अभिनय करता हुआ) अथवा, नही, नही। मुझ अकेले ही ब्राह्मण के (चगुल में फँसा है।)

चेटी—(प्रेम से) भर्तृ दारिके ! मैं कहती हूँ कि इस निष्करुण (देवी) के सामने (वीणा) बजाने से क्या लाभ ?

[वीणा पर झपटती है।]

नायिका—(क्रोध से) भगवती गौरी की निन्दा मत करो। आज भगवती ने मुझपर कृपा कर दी है।

चेटी—(हर्ष से) भर्तृदारिके ! कहो। कैसी ?

नायिका—मुझे स्मरण है कि स्वप्न में इसी वीणा को बजाती हुई। मैं भगवती गौरी के द्वारा कही गयी हूँ। "वत्से मलयवती ! मैं

तुम्हारे इस वीणा (बजाने के) विज्ञान के प्रदर्शन से तथा बालकों के लिये कठिन तथा असाधारण मेरी भक्ति से सन्तुष्ट हो गयी हूँ। अतः शीघ्र ही विद्याधर चक्रवर्त्ती तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा।

चेटी—(हर्ष से) भर्तृदारिके। यदि ऐसा है तो तुम इसे स्वप्न क्यो कह रही हो। तुम्हारा मन चाहा वरदान देवी ने दे दिया है।

विदूषक—(सुनकर) मित्र! हमारे लिये देवी का दर्शन करने का यह अवसर है। आओ निकट चलें।

नायक—मैं न जाऊँगा।

विदूषक—(नायक के न चाहने पर भी नायक को बलात् खींच कर तथा निकट जाकर) आप का कल्याण हो। चतुरिका सच कहती है। वह देवी ने वरदान ही दिया है।

नायिका—[साध्वस (भय तथा अनुराग) के साथ नायक को लक्ष्य कर] यह कौन है?

चेटी—(नायक को ध्यान से देखकर, जनान्तिक) इस अलौकिक आकृति के कारण मेरा अनुमान है कि यह वही भगवती के द्वारा प्रसाद रूप में दिया हुआ व्यक्ति है।

नायिका—ललचाकर तथा लजाकर नायक की ओर देखती है।

नायक—चंचल तथा विशाल नेत्र वाली, श्वास प्रश्वास के द्वारा विशाल घने स्तनों को कंपित करने वाली, तप करने से ही तुम्हारी यह शरीर पर्याप्त श्रान्त हो चुकी है। फिर ए घबड़ाने वाली। क्यों यह शरीर सताई जा रही है ॥१७॥

नायिका—(जनान्तिक) अत्यन्त साध्वस भाव के कारण इसके सामने नहीं रह सकती। (नायक की ओर तिरछी आँखों तथा लजाकर देखती हुई किंचित् घूम जाती है।)

चेटी—भर्तृदारिके! यह क्या है?

नायिका—मैं इसके निकट नही रह सकती। आओ। दूसरी जगह चलें। (उठना चाहती है।)

विदूषक—यह डर रही है। मैं (इसे) अपनी पढ़ी हुई विद्या की तरह क्षण भर रोक रखता हूँ।

नायक—क्या हानि है?

विदूषक—महाशया! क्या अपके तपोवन में ऐसी ही प्रथा है

जिस (प्रथा) के कारण आये हुए अतिथि का शब्द मात्र से भी सत्कार नहीं किया जाता ?

चेटी—(नायिका की ओर देखकर स्वगत) इस (नायिका) की आँखें इस (नायक) पर अनुरक्त सी प्रतीत होती हैं। अस्तु। ऐसा कहूँगी। (प्रकट) भर्तृदारिके ! ब्राह्मण ठीक कह रहा है। तुम्हें अतिथियों का सत्कार करना उचित है। फिर क्यों ऐसे (सुयोग) महानुभाव के (उपस्थित) होने पर कर्तव्य में मूढ़ सी क्यो हो गई हो। अथवा, तुम रुको। मैं ही यथोचित् (सत्कार) करूँगी। (नायक के प्रति) आर्य का स्वागत है। आप आसन ग्रहण कर इस प्रदेश को सुशोभित करें।

विदूषक—मित्र ! यह ठीक कहती है। बैठकर यहाँ क्षण भर विश्राम करें।

नायक—आपने ठीक कहा।

[दोनो बैठते हैं।]

नायिका—(चेटी के प्रति) अरी परिहास करने वाली ऐसा मत करो। कदाचित कोई तापसी देख लेगा तो मुझे व्यभिचारणी समझेगा।

[तापस का प्रवेश]

तापस—कुलपति कौशिक के द्वारा मैं आज्ञापित हुआ हूँ कि "वत्स शाण्डिल्य ! सिद्धराजमित्र वसु पिता की आज्ञा पाकर विद्याधरों के चक्रवर्ती राजा होने वाले राजकुमार जीमूतवाहन को, जो यहीं कहीं मलयपर्वत पर वर्तमान हैं, अपनी बहन मलयवती के हेतु वर निश्चित करने के लिये देखने गये हैं। उसकी प्रतीक्षा करने वाली मलयवती का मध्यान्ह स्नान का समय कदाचित् बीत जाएगा अतः तुम इसे (मलयवती को) बुला लाओ" अत. मैं तपोवन में स्थित गौरी के मन्दिर की ओर ही जा रहा हूँ (परिक्रमा कर तथा भूमि को देखकर आश्चर्य से) अरे। इस धूलिमय भूप्रदेश में ये किसके पदचिन्ह हैं जिसमें चक्र के चिन्ह स्पष्ट प्रगट हो रहे हैं। (सामने जीमूत वाहन को लक्ष्य कर) ये पदचिन्ह अवश्य इसी महापुरुष के है। क्योंकि—

मस्तक पर उष्णीष (पगड़ी का चिन्ह) स्पष्ट प्रगट हो रहा है। भृकुटियों के बीच में यह भौंरा है। आँखें लाल कमल की तरह

हैं। (अपनी विशालता के कारण) वक्षस्थल सिंह से बाजी लगा रहा है। दोनो चरण चक्र-चिन्हित हैं। इन सब कारणो से मैं समझता हूँ यह कोई वही जो विद्याधरो का चक्रवर्ती हुए बिना नहीं रह सकता है ॥१८॥

अथवा सन्देह करने से क्या लाभ ? स्पष्ट है कि इनको जीमूत वाहन होना चाहिये। (मलयवती को ध्यान से देखकर) अरे। यह राजपुत्री भी है। (दोनो को देखकर) बहुत दिनो के बाद ब्रह्मा उचित कार्य करने वाला होगा। (निकट जाकर नायक के प्रति) आपका कल्याण हो।

नायक—भगवन् ! जीमूतवाहन (आपको) अभिवादन कर रहा है। (उठना चाहता है।)

तापस—बस। बस उठना अनावश्यक है। "अतिथि सब का गुरु (पूजने से) होता है।" इस न्याय से आप ही हमे पूज्य हैं। आनन्द से बैठिये।

नायिका—आर्य ! प्रणाम करती हूँ।

तापस—(नायिका के प्रति) वत्से। अनुरूप पति को प्राप्त करो। राजपुत्री ! कुलपति कौशिक ने तुम्हें कहा है कि "मध्यान्ह स्नान का समय बीत रहा है। अत. शीघ्र आओ।

मलयवती—जो गुरुजी की आज्ञा। (स्वगत) एक ओर गुरु जी की आज्ञा है। दूसरी ओर प्रियतम के दर्शन का सुख है। (अतः) गमनागमन का विचार करता हुआ मेरा मन डावांडोल सा हो रहा है ॥१६॥

[उठकर तथा लम्बी सास लेकर लजाती हुई तथा प्रेम के साथ नायक की ओर देखती हुई तापस के साथ प्रस्थान करती है।]

नायक—(विकलता के साथ नायिका की ओर देखता हुआ) जंघाओं की विशालता के भार से धीरे धीरे चलने वाली इस (नायिका) ने विरुद्ध दिशा की ओर जाते हुये भी मेरे हृदय में पैर जमाया (मेरे मन में बस गई) ॥२१॥

विदूषक—तुम दर्शनीय वस्तु देख चुके। अब मध्यान्ह सूर्य के किरणो के ताप से मानो द्विगुणित हुई मेरी उदराग्नि धधक रही है। आओ। निकल चलो यहाँ (से) ब्राह्मण अतिथि बनकर मुनि-

जनों से प्राप्त हुये कन्द, मूल तथा फलों से ही तब तक (जब तक कुछ और न मिले) (अपने) प्राण बचाऊँ।

नायक—(ऊपर देखकर) भगवान् सूर्य आकाश के मध्य में वर्तमान हैं। क्योंकि।

उष्णता से संतप्त होकर (अत एक) उसी समय (चन्दन वृक्ष से) घर्षण करने से कारण (द्रवित हुये) चन्दन इसके द्वारा पीत हुए कपोलों को धारण करता हुआ, तथा अविच्छिन्न अपने कानों से, जो ताल पत्र के सामान विशाल है, मुख को हवा करता हुआ यह गज पति इस समय शुण्ड के द्वारा ऊपर फेंके हुए तुषारों से वक्षस्थल को बारंबार सीचता हुआ अनिवार्य उत्कण्ठा के कारण हुई (विरही की) असह्य दशा की तरह दशा को पहुँच चुका है॥ ॥२१॥

[सब का प्रस्थान]

[प्रथम अंक समाप्त]

—०:०—

॥ इस पद्य से राजा अपनी विरहावस्था की व्यंजना करता है। विरही भी विरह ताप से सन्तप्त होकर चन्दन रस की तरह पीला पड जाता है। बारंबार भीगा पंखा डुलाता है। अपने अथवा मित्रादिकों के हाथ से हृदय को सिक्त करता है।

द्वितीय अंक

[चेटी का प्रवेश ।]

चेटी—मैं भर्तृदारिका मलयवती के द्वारा आज्ञापित हुई हूँ कि "मनोहरिके ! देखो आज मेरे भाई आर्य मित्रावसु देर कर रहे हैं। जाकर आये या नही ? (परिक्रमा करती है। नेपथ्य की ओर देखकर) यह कौन है जो जल्दी जल्दी इधर ही आ रही है। (ध्यान से देखकर) क्या चतुरिका है ?

[दूसरी चेटी का प्रवेश]

पहली—(निकट जाकर) चतुरिके ! मुझे छोड़कर क्यों जल्दी जल्दी जा रही हो ?

दूसरी—मनोहरिके ! भर्तृदारिका मलयवती के द्वारा मैं आज्ञापित हुई हूँ कि, "चतुरिके। फूलो के चुनने से मेरा शरीर शिथिल हो गया है। मानो शरद की धूप से उत्पन्न यह सन्ताप मुझे अधिक कष्ट दे रहा है। अत. तुम जाओ। नये नये केलें के पत्तो से आच्छादित चन्दनलता के कुज में चन्द्रकान्त मणियों की चट्टानों को सजाओ।" मैंने जैसी आज्ञा मिली थी, वैसा कर दिया है। अब जाकर भर्तृदारिका से निवेदन कर देती हूँ।

पहली—यदि ऐसा है तो शीघ्र जा कर निवेदन करो जिससे वहाँ जाकर इस (राज पुत्री) का कष्ट कम हो जाय।

दूसरी—[व्यंग्य से हंसकर] (स्वगत) इसका कष्ट ऐसा नही है जो ऐसा कम हो जाय। मेरा अनुमान है कि स्वच्छ तथा रमणीय चन्दनलता के निकुंज को देखकर उसे अधिक कष्ट होगा। (प्रकट) तुम जाओ।

मैं भी जाकर ("चन्द्रकान्त) मणियों की चट्टान सजा दी गई" यह भर्तृदारिका को निवेदन करती हूँ।

[दोनों का प्रस्थान।]

[प्रवेशक समाप्त।]

[विरह वेदना से व्याकुल मलयवती तथा चेटी का प्रवेश।]

मलयवती—[लम्बी सांस लेकर] (स्वगत) हृदय उस पुरुष के

विषय में लज्जा के कारण मुझे (तो) उस समय पराङ्मुखकर इस समय तुम स्वयं ही वहा चले गये हो। वाह! रे तुम्हारा स्वार्थीपन! (प्रकट) चतुरिके! मुझे भगवती के मन्दिर का मार्ग बताओ।

चेटी—(स्वगत) चन्दनलता के कुंज की ओर चली हुई यह भगवती के मंदिर का नाम लेती है। (प्रकट) भर्तृदारिका तो चन्दनलता के कुज की ओर चल रही है।

नायिका (लजाकर) अच्छी याद दिलाई आओ। चलें।

चेटी—भर्तृदारिका इधर से आएँ।

नायिका—(विरुद्ध दिशा में जाती है।)

चेटी—[पीछे देखकर, उद्वेग करती हुई] (स्वगत) धन्य है इसकी हृदय शून्यता! यह तो उसी देवी के मंदिर की ओर ही जा रही है। (प्रकट, भर्तृदारिके! (भर्तृदारिके। इधर नहीं है चन्दनलता का कुज। इधर आओ।

नायिका—दीनता पूर्वक मुसकुराती हुई वैसा करती है।

चेटी—यह है चन्दनलता का कुज। प्रवेश कर चन्द्रकान्त मणियों की चट्टान पर बैठकर भर्तृदारिका स्वस्थ हो जायँ।

[दोनो बैठती है।]

नायिका—[लम्बी साँस लेकर स्वगत] भगवन कुसुमायुध। जिसके रूप की शोभा के द्वारा तुम जीत लिये गये हो, उसका तुमने कुछ न बिगाड़ा। किन्तु मुझ अनपराधिनी को अबला समझकर मारते हुए लज्जित नही होते? (अपने को देखकर मदनावस्था का अभिनय करती हुई, प्रकट) अरी। अपने घने पल्लवों से सूर्य की किरणो को भी रोक लेने वाला भी यह चन्दनलता का कुज क्यो अब तक भी मेरे सन्ताप दुख को दूर नही कर रहा है।

चेटी—मैं यहाँ सन्ताप होने का कारण जानती हूँ किन्तु उसे असंभव समझकर भर्तृदारिका उस पर विश्वास न करेगी।

नायिका—(स्वगत) इसने मुझे जान लिया है। फिर भी पूछूँगी। (प्रकट) वह क्या है जिसपर विश्वास नहीं किया जा सकेगा? कहो वह क्या कारण है।

चेटी—(इसका कारण) यह तुम्हारे मन में विराजमान वर है।

नायिका—(हर्ष से उठकर दो तीन कदम चलकर) कहाँ है, कहाँ है वह ?

चेटी—(उठकर मुसकुराती हुई) भर्तृदारिके वह कौन ?

नायिका—लज्जा के साथ बैठकर अधोमुख होती है।

चेटी—भर्तृदारिके ! मैं यह कहना चाहती थी कि "यह तुम्हारे हृदय में विराजमान वर को देवी (गौरी) ने (तुम्हारे) स्वप्न में दिखलाया था। भर्तृदारिका के द्वारा मकरध्वज (कामदेव) हो, जिन्होंने एक क्षण के लिये कुसुम चाप अलग रख दिया था, स्वप्न में देखे गये थे। और वे ही इस कष्ट के कारण है। जिस (कष्ट) के कारण स्वभावत शीतल चन्दन की लता का यह कुंज तुम्हारे कष्ट को नही दूर कर रहा है।

नायिका—(चतुरिका के बालों पर हाथ फेरती हुई) (सचमुच) तुम चतुरिका हो। तुम से क्या छिपाया जाय। अत. कहूँगी।

चेटी—भर्तृदारिके ! 'वर' (शब्द) के उच्चारणमात्र से उत्पन्न इस घबराहट ने अभी कह दिया है। अत. दुख मत करो। यदि मैं (सचमुच) चतुरिका हूँ, तो वह (वर) भी भर्तृदारिका को बिना देखे नहीं रुक सकता। इस बात को भी मैंने ताड़ लिया है।

नायिका—(आखो में आँसू भरकर) हमारा भाग्य इतना (अच्छा) कहाँ है।

चेटी—भर्तृदारिके ! ऐसा मत कहो। क्या मधु (राक्षस) का मथन करने वाले (विष्णु) वक्षस्थल के द्वारा लक्ष्मी को बिना धारण (आलिंगन) किये क्या चैन पाते हैं।

नायिका—भले आदमी मीठी बातें छोड़कर क्या कुछ और भी बोलना जानते हैं ? सखि ! मुझे इसलिये और भी कष्ट हो रहा है कि मैंने शब्द मात्र से भी उस महानुभाव का सत्कार नहीं किया। वे भी सम्मान न करने वाली मुझे मूढ़ समझेंगे। (रोती है।)

चेटी—भर्तृदारिके ! मत रोओ। अथवा (आप) क्यों न रोएँगी। इसके हृदय का अधिकाधिक सन्ताप इसे अत्यन्त कष्ट दे रहा है। अब इस समय मैं यहाँ क्या करूँ ? चन्दनलता के पल्लवों का रस इसके हृदय पर लगाऊँगी। (उठकर, चन्दन के पल्लवों को लेकर तथा (उसे) निचोड़ कर हृदय पर लगाती है।) भर्तृदारिके। मैं कहती हूँ रोओ

मत। यह इस प्रकार (हृदय पर लगाया हुआ) का चन्दन का रस जो इन निरन्तर गिरते हुए आँसुओं के द्वारा गरम हो गया है (अत एव) तुम्हारे हृदय के इस कष्ट को दूर नही कर रहा है। (केले का पत्ता लाकर डुलाती है।)

चेटी—भर्तृदारिके! इसे दोष मत दो।

स्निग्ध चन्दन लता के पल्लवो के संसर्ग से शीतल हुए भी इस केले के पत्ते से उत्पन्न हवा को तुम्हीं अपने (उष्ण) निश्वासो के द्वारा उष्ण कर रही हो ॥१॥

नायिका—(आँखों मे आँसू भरकर) सखि! इस कष्ट की शान्ति का कोई उपाय भी है ?

चेटी—भर्तृदारिके! है। यदि वे ही यहाँ आ जायँ।

[नायक तथा विदूषक का प्रवेश।]

नायक—आँख की स्वच्छता तथा काली आभा के द्वारा आश्रम के उन वृक्षों की शाखाओं में लटके हुए (अतएव) सुशोभित होते हुए कृष्ण (मृगो) के चर्म समूह से युक्त की तरह धरती हुई उस (नायिका) के द्वारा ही मुनि के सम्मुख हो आँख घुमाकर जो मैं देखा गया सो उसी से मुझ पर (काफी) चोट पहुँच चुकी है। फिर हे पुष्पायुध (काम) क्यो व्यर्थ ही आप इन बाणो को चला रहे हैं ॥२॥

विदूषक—मित्र! कहाँ गया वह तुम्हारा धैर्य ?

नायक—मित्र! मैं तो धीर ही हूँ। क्योंकि :—

क्या मैंने चन्द्र के कारण उज्वल (चांदनी) रातो को नही बिताया। क्या मैंने नील कमल को नही सूँघा ? विकसित मालती पुष्प की सुगंध से युक्त सध्या पवन को क्या नहीं सहन किया ? क्या कमलाकर (तालाब) में मैंने भौंरो की गुंजार न सुनी। (सब कुछ हुआ) वह क्या कारण है जिससे आप स्त्री से वियुक्त होने पर मुझे 'अधीर' कह रहे हैं, सच कहिये ॥३॥

(सोचकर) अथवा, (तुमने) झूठ नही कहा। मित्र आत्रेय। सचमुच मैं अधीर ही हूँ।

अनङ्ग (शरीर रहित) के द्वारा चलाये गए फूलों के बाण भी जिस (मेरे) स्त्री हृदय (भीरु) ने नही सहन किये वह मैं तुम्हारे सामने 'मैं धीर हूँ' यह कैसे कहूँ ॥४॥

विदूषक—(स्वगत्) इस प्रकार अपना अधैर्य स्वीकार करते हुए इसने अपने हृदय का महान क्षोभ प्रकट कर दिया है। इसके मन को कहाँ लगाऊँ ? (प्रकट) मित्र ! गुरुजनों की शुश्रूषा कर तुम आज जल्दी कैसे आ गये ?

नायक—मित्र ! तुमने ठीक पूछा। अथवा किस दूसरे को यह यह कहा जा सकता है ? मुझे स्मरण है, आज स्वप्न में—वही प्रियतमा (उँगली दिखाकर) इस चन्दनलता के कुञ्ज में चन्द्रकान्त मणि की शिला पर बैठी हुई, प्रणय कुपित और मुझे कुछ उलहना देती हुई सी तथा रोती हुई मैंने देखी। स्वप्न में अनुभूत प्रियतम के समागम के कारण रमणीय इस चन्दन लता के कुञ्ज में (आज का) शेष दिन बिताना चाहता हूँ। आओ। चलें।

[परिक्रमा करते हैं]

चेटी—(कान लगाकर घबराती हुई) भर्तृदारिके ! पैरों की आहट की तरह कुछ (सुनाई दे रहा) है।

नायिका—(घबड़ाकर) मेरे इस आकार को देखकर कोई मेरे हृदय को न भाँपने लग जाय। उठो। इस रक्त अशोक (वृक्ष) के पीछे छिपकर देखें, 'यह कौन है' ?

[दोनों वैसा करती हैं]

विदूषक—यह है चन्दनलता का कुञ्ज आओ। प्रवेश करें।

[प्रवेश अभिनय करते हैं।]

नायक—चन्द्रकान्त मणियों की शिलाओं से युक्त भी यह चन्द्रमुखी से रहित चन्दन लता का कुञ्ज चन्द्रिका रहित सायंकाल की तरह मुझे अच्छा नहीं लगता ॥४॥

चेटी——(देखकर) भर्तृदारिके ! बधाई है। वे ही—तुम्हारे प्रियतम हैं।

नायिका—(देखकर हर्ष तथा साध्वस पूर्वक) इसे देखकर अत्यन्त साध्वस भाव के कारण मैं यहाँ निकट ठहर नहीं सकती। आओ दूसरी ओर चलें। (विकलता पूर्वक पैर रखकर) मेरी जाँघें (पैर) काँप रही हैं)।

चेटी—(व्यंग्य से हँसकर) अरी कायर यहाँ तुम्हें कौन देखता है। क्या यह रक्त अशोक का वृक्ष तुमने भुला दिया। यहीं बैठें।

[दोनों वैसी करती हैं।]

विदूषक—(ध्यान से देखकर) मित्र ! यह वह चन्द्रकान्त मणि की शिला है।

नायक—(आँखों में आँसू भरकर लम्बी सांस लेता है।)

चेटी—भर्तृदारिके ! स्वप्न प्रलाप की तरह (कुछ) सुन रही हूँ। दोनों सावधान होकर सुनें।

[दोनों सुनती है।]

विदूषक—(हाथ से हिलाकर) मित्र मैं कह रहा हूँ कि यह वही चन्द्रकान्त मणि की शिला है।

नायक—(आँखों में आँसू भरकर तथा लम्बी सांस लेकर) ठीक पहिचाना (हाथ दिखाकर)

यह वही चन्द्रकान्त मणि की शिला है, जहाँ (विरह के कारण) पांडुर हुए अपने मुख को बाएँ हाथ (करतल) पर टेक कर बैठी हुई, निरन्तर श्वास-प्रश्वास करने वाली, मुझे देर होती देखकर भृकुटियों के किंचित् उत्कंपन द्वारा स्पष्ट उत्कंठा प्रगट करने वाली [प्रियतम (मेरे) के अनागमन का निश्चय होने के कारण] मन सन्ताप को स्वयं शान्त करने वाली (अत.एव) रोती हुई प्रिया, मेरे द्वारा देखी गयी थी ॥६॥

अतः इसी चन्द्रकान्त मणि की शिला पर बैठें।

[दोनों बैठते हैं]

नायिका—(सोचकर) यह (नायक के द्वारा वर्णित) कौन हो सकती है।

चेटी—भर्तृदारिके ! जिस प्रकार छिपकर हम लोग इन्हें देख रहे हैं, उसी प्रकार कहीं इनके द्वारा तुम न देखी जाती हो।

नायिका—हो सकता है। किन्तु किस प्रणयकुपित प्रियजन को लक्ष्यकर यह नायक ऐसी बातें कर रहा है।

चेटी—भर्तृदारिके। ऐसी शंका मत करो। फिर हम लोग सुनें।

विदूषक—(स्वगत) यह (नायक) इसको (नायिका की) बातों से प्रसन्न हो रहा है। अस्तु। इसी को (बातों को) बढ़ाऊँगा। (प्रकट) मित्र ! तब तुमने उस रोती हुई (प्रियतमा) से क्या कहा ?

नायक—मित्र ! मैंने कहा—

यह आँसुओं के जल से सीची हुई चन्द्रकान्त मणि की शिला तुम्हारे मुखचन्द्र के उदय से द्रवित होती हुई प्रतीत होती है*॥७॥

नासिका—(क्रोध से) चतुरिके। इससे अधिक अब क्या सुनता है। आओ। अन्यत्र जाएँ।

चेटी—(दोनो हाथ पकडकर) भर्तृदारिके। ऐसा मत कहो। तुम्ही स्वप्न मे (इसके द्वारा) देखी गयी हो। इसकी आँखें कही और नही लगी हैं।

नायिका—मेरा मन विश्वास नहीं करता। इनकी बातें समाप्त होने तक प्रतीक्षा करें।

नायक—मित्र! इच्छा है कि उसी (स्त्री) को इस शिला पर चित्रित कर उस चित्रांकित स्त्री से अपना मन बहलाऊँगा। अत यहीं पर्वत के आस पास से मन शिला मैनसिल के टुकड़ो को ले आओ।

विदूषक—जो आपकी आज्ञा। (परिक्रमा कर। लेकर उपस्थित होता है।) मित्र! तुमने एक ही रग लाने की आज्ञा दी थी। किन्तु मैंने यहीं पर सुलभ ऐसे पांच प्रकार के रग (के पत्थर) ले आया हूँ। आप चित्रांकन करें। (देता है।)

नायक—मित्र! अच्छा किया। (लेकर चित्रांकन करता हुआ रोमांचित होकर) मित्र। देखो।

*पूर्णबिम्ब की शोभा को धारण करने वाले (अतएव) नेत्रों को सुख देने वाले चन्द्र की तरह पके अनार की तरह ओष्टबिम्ब की शोभा को धारण किये हुये (अतएव) आँखों को सुख देने वाले इस स्त्री के मुख की सर्व प्रथम दृष्टिगोचर होने वाली रेखा भी सुख देती है॥८॥

[चित्रांकन करता है।]

विदूषक—(कौतूहल से ध्यान पूर्वक देखकर) (प्रतिमा के) अप्रत्यक्ष होने पर भी इस प्रकार सुन्दर चित्र खींचा जाता है। वा।

नायक—(मुसकुराकर) मित्र!

---

*यह प्रसिद्ध है कि चन्द्रोदय होने पर चन्द्रकान्त मणि से जल निकलने लगता है।

*द्वितीया की चन्द्ररेखा कितनी सुखद होती है इसका अनुभव तो रसिकों को प्रत्यक्ष होता है।

मानसिक सतत चिन्ता के कारण सन्मुख स्थापित यह प्रिय पास ही है। जिसे देख देख कर मैं चित्र खींचता हूँ। इसमें क्या आश्चर्य है ॥६॥

नायिका—(आँखों में आँसू भर कर) चतुरिके। संभाषण का अन्त जान लिया। आओ। मित्रावसु को देखें।

चेटी—(खेद के साथ) (स्वगत) इसकी (मलयवती की बातें) जीवन से निरपेक्ष होकर हो रही हैं। (प्रकट) भर्तृदारिके। मनोहारिका तो वहाँ गई ही है। कदाचित् कुमार मित्रावसु यहाँ आते ही होंगे।

[मित्रावसु का प्रवेश।]

मित्रावसु—मुझे पिता जी ने आज्ञा दी है कि वत्स मित्रावसु। यहाँ पास रहने के कारण जीमूतवाहन की हम लोगों ने भली भाँति परीक्षा कर ली। इससे योग्य दूसरा वर कहाँ मिलेगा। अत इससे वत्सा मलयवती का विवाह कर दो" मैं तो स्नेह के बस किसी और ही अवस्था का अनुभव कर रहा हूँ। और भी,

जो विद्याधर राजाओ के वश में सर्वश्रेष्ठ है, पडित है, सज्जनों को माननीय है, रूप में अप्रतिम है, जिसका धन पराक्रम है, विद्वान् है, विनीत है तथा तरुण है। और जो प्राणियों के लिये करुणा से प्रेरित होकर प्राण भी दे सकता है। इन कारणों से इसे अपनी वहन को देते हुए मुझे अत्यन्त सन्तोष है तथा दु:ख*भी है ॥१०॥

और सुना भी है कि "(इस समय) जीमूतवाहन गौरी मदिर के निकटवर्ती चन्दन लता से बनाये हुए घर में वर्तमान है"। वह यह चन्दनलता से बना हुआ घर है। प्रवेश करता हूँ।

[प्रवेश करता है।]

विदूषक—(घबराते हुए देखकर) मित्र! इस केले के पत्ते से इस चित्र लिखित कन्या को ढाँक दो। यह सिद्धों का युवराज मित्रावसु इधर आ गया है। कदाचित् देख लेगा।

नायक—(केले के पत्ते से ढाँकता है।)

---

*दु:ख इस बात का है कि जीमूतवाहन समय पड़ने पर प्राण भी देने के लिये प्रस्तुत रहता है।

मित्रावसु—(प्रवेश कर) कुमार ! मित्रावसु प्रणाम कर रहा है।

नायक—(देखकर) मित्रावसु । स्वागत है । यहाँ बैठिये ।

चेटी—भर्तृदारिके ! राजकुमार मित्रावसु आ गये ।

नायिका—अरी ! यह मेरे लिये सुख की बात है ।

नायक—मित्रावसु ! सिद्धराज विश्वावसु का कुशल तो है ।

मित्रावसु—पिताजी सकुशल हैं । मैं तुम्हारे पास पिताजी का संदेश लेकर आया हूँ ।

नायक—मान्यवर ने क्या कहा है ?

नायिका—अब सुनूँगी कि पिताजी ने क्या कुशल समाचार भेजा है ।

मित्रावसु—(आँखों में आँसू भरकर) यह कहा है—"तात ! मुझे इस समस्त सिद्धराज वंश के प्राणों की तरह मलयवती नामक कन्या है । उसे मैं तुम्हें दान दे रहा हूँ । स्वीकार करो ।

चेटी—(व्यंग्य से हँसकर) भर्तृदारिके । अब क्रोध क्यों नहीं करती हो ।

नायिका—(मुसकुराकर तथा लजाकर नीचे मुँह कर लेती है) अरी । हँसो मत । क्या यह भूल गई कि इनका मन कहीं और लग गया है ।

नायक—(जनान्तिक) मित्र (धर्म) संकट में पड़ गया हूँ ।

विदूषक—(जनान्तिक) मैं जानता हूँ कि उसे छोड़कर तुम्हारा मन और जगह नहीं लग सकता । अत. कुछ तो कहकर इसे (मित्रा-वसु को) विदाकर दो ।

नायिका—(क्रोध से) (स्वगत) हत भाग्य । यह कौन नहीं जानता है ।

नायक—आपके साथ होने वाले इस प्रशंसनीय संबंध को कौन नहीं चाहेगा । किन्तु अन्य स्थान पर लगे हुये चित्त को दूसरी ओर लगाना सम्भव नहीं है । अत मैं इसे (मलयवती को) स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूँ ।

नायिका—(मूर्छा का अभिनय करती है ।)

चेटी—भर्तृदारिके ! सावधान हो सावधान हो ।

विदूषक—यह पराधीन है। इससे प्रार्थना करने से क्या लाभ ? अत. इसके माता पिता से जाकर प्रार्थना करें।

मित्रावसु—(स्वगत) उचित है यह माता पिताओं का उल्लंघन नही करता। इसके पिता भी गौरी के आश्रम में रहते हैं। अतः वहाँ जाकर इसके पिता के द्वारा (इसे) मलयवती को स्वीकार कराऊँगा।

नायिका—(होश में आती है।)

मित्रावसु—इस प्रकार अपना समस्त (विचार) निवेदन करने वाले हम लोगों (के प्रस्ताव) का निषेध करने वाले कुमार ही अधिक (निषेध करने का कारण) जानते हैं।

नायिका—(क्रोध से मुँह बनाकर) इस निषेध करने के कारण अपमानित मित्रावसु फिर मंत्रणा कर रहे हैं ?

मित्रावसु—(प्रस्थान।)

नायिका—(आँखो में आँसू भरकर अपने शरीर को देखती हुई, स्वगत) दुर्भाग्य रूपी कलंक से मलिन तथा अत्यन्त दुखी मेरे शरीर को अब भी धारण करने (जीवित रखने) से क्या लाभ ! अत यहीं अशोक वृक्ष के नीचे अतिमुक्त लता के द्वारा (गला) बाँधकर अपना (शरीर का) घात करूँगी। अब ऐसा ही करूँ। (प्रकट दीन हंसी हसकर) अरी। जरा देखो तो कि मित्रावसु गये या नही, जिससे मैं भी यहाँ से जाऊँगी।

चेटी—(कुछ दूर जाकर तथा देखकर, स्वगत) इसका मन कुछ और ही देख रही हूँ। अत. न जाऊँगी। यही छिपकर देखूँगी कि यह क्या कर रही है।

नायिका—(चारों ओर देखकर तथा पाश लेकर) भगवति। गौरि। तुमने यहाँ (इस जन्म मे) कृपा नही की अतः जन्मान्तर में इस प्रकार दुख भामिनी न होऊँ, ऐसा करना। (इतना कहकर गले में फाँस डालती है।)

चेटी—(देखकर घबराती हुई निकट जाकर) बचाओ, बचाओ, आर्य ! यह भर्तृदारिका गले मे फाँस लगाकर अपना घात कर रही है।

नायक—(घबराकर निकट आकर) वह कहाँ है, कहाँ है ?

चेटी—यह है अशोक वृक्ष के नीचे।

नायक—(देखकर हर्ष से) यह वही है जो हमारे मनोरथ की (विश्राम) भूमि है। (नायिका को हाथ से पकड़ कर लता का पाश दूर फेंकता है।

मुग्धे! नहीं! नहीं! इस प्रकार साहस करना ठीक नहीं है। पल्लव की तरह (सुकुमार) इस हाथ को लता से दूर करो। (सुकुमारता के कारण) लताके फूलों को भी रोकने के लिये जिसे मैं समर्थ नहीं समझता हूँ वह तेरा (हाथ) (गला) बाँधने के लिये (अत एव कठोर) इस पाश को कैसे छू रहा है ॥१०॥

नायिका—(साध्वस भाव से युक्त होकर) अरी! यह कौन है। (क्रोध से हाथ छुडा लेना चाहती है।) मेरा हाथ छोड़ दो। तुम रोकने वाले कौन हो? क्या मरने के लिये भी तुम्हारी प्रार्थना करनी पड़ेगी?

नायक—मैं न छोड़ूँगा।

मोतियों के हारों की लता पहनाने के योग्य गले में तुमने जिस हाथ के द्वारा पाश पहिनाया है वह यह अपराधी हाथ पकड़ लिया है। वह कैसे छोड़ा जा सकता है?

विदूषक—अस्तु! किन्तु इसके मरण के व्यवसाय में प्रवृत्त होने का क्या कारण है?

चेटी—यही तुम्हारा प्रिय मित्र।

नायक—क्या मैं ही इसके मरण का कारण हूँ। मैं समझ नहीं रहा हूँ।

विदूषक—महाशया! कैसे।

चेटी—(जान बूझकर) तुम्हारे प्रिय मित्र ने कोई वह प्रियतमा शिलातल पर चित्रित की है (और) उसी से अधिक प्रेम होने के कारण मित्रावसु के द्वारा (विवाह कर) दी जाती हुई भी इसको इसने (नायकने) स्वीकार नहीं किया। अत एव अत्यन्त विरक्त होकर इसने (मलयवती ने) यह कार्य किया है।

नायक—(हर्ष से, स्वगत) क्या यही विश्वावसु की कन्या मलयवती है। अथवा रत्नाकर (समुद्र) को छोड़कर चन्द्रलेखा का जन्म और कहाँ हो सकता है। हा! मैं इससे वंचित हो गया।

विदूषक—महाशया! यदि ऐसा है तो हमारा प्रियमित्र अन-

पराधी है। अथवा मुझपर विश्वास नही है तो स्वयं ही शिला के निकट जाकर देख लें।

नायिका—(हर्ष तथा लज्जा से नायक की ओर देखती हुई हाथ खीचती है)

नायक—(मुसकुराकर) तब तक न छोड़ूँगा जब तक शिला पर चित्रित मेरी हृदयवल्लभा को देख न लोगी।

[सब परिक्रमा करते हैं।]

विदूषक—(केले के पत्ते को हटाकर) महाशया! देखो। इसके इस हृदयवल्लभ जन (प्रियतमा) को।

नायिका—(ध्यान से देखकर, जनान्तिक, मुसकुराकर) चतुरिके। मानों मैं ही चित्रित की गई हूँ।

चेटी—(चित्र तथा नायिका को ध्यान से देखकर) भर्तृदारिके। क्या कहती हो। "मानो मैं ही चित्रित की गयी हूँ।" इस प्रकार की समानता जिससे यह नही जाना जाता है कि इस शिला तल में भर्तृदारिका का प्रतिबिम्ब पड़ा हुआ है अथवा तुम चित्रित की गई हो।

नायिका—(हसकर) अरी! चित्रित की हुई मुझे दिखा कर इस (नायक) के द्वारा मैं खूब लज्जित की गई हूँ।

विदूषक—इस समय तुम्हारा गान्धर्व विवाह हो गया। इनका हाथ छोड दो। यह कोई (स्त्री) जल्दी जल्दी इधर ही आ रही है।

नायक—(छोड़ता है।)

दूसरी चेटी—(प्रवेश कर हर्ष से) भर्तृदारिके बधाई है। कुमार जीमूतवाहन के माता पिताओं ने तुम्हें स्वीकार कर लिया।

विदूषक—(नाचता हुआ) हा हा हा! मेरे प्रिय मित्र के सब मनोरथ पूरे हो गये। अथवा नहीं नहीं महाशया या मलयवती के। अथवा इन लोगों के नहीं। (खाने का अभिनय करता हुआ) मेरे ही अकेले ब्राह्मण के (सब मनोरथ पूरे हो गये।

चेटी—(नायिका को लक्ष्य कर) युवराज मित्रावसु ने मुझे आज्ञा दी है कि "आज ही मलयवती का विवाह है। अतः उसे शीघ्र लेकर आओ।" अतः आओ। जाएँ।

विदूषक—दासी की पुत्री तुम इसे लेकर जा रही हो। क्या प्रिय मित्र यही रहे।

चेटी—हताश! जल्दी मत करो। तुम लोगों के लिये भी *स्नपनक (स्नान का सामान) आ ही रहा है।

नायिका—(अनुराग तथा लज्जा से नायक की ओर देखती हुई अपने परिवार (चेटी आदि) के साथ प्रस्थान करती है।)

वैतालिक—(नेपथ्य मे पढ़ता है।)

पिष्टातक (पीले रग का चूर्ण) की वर्षा होने के कारण इस मलय-पर्वत पर मेरु की शोभा को धारण करने वाला तथा सिन्दूर की वर्षा के कारण प्रातःकालीन तथा सन्ध्याकालीन धूप की शोभा को तिरस्कृत करने वाला सिद्ध लोक (सिद्धों की निवास भूमि) चचल चरणों मे बजते हुए नूपुरो की ध्वनि से अधिक मधुर प्रमदाओं के सगीतो से आपकी सिद्धि के लिये विवाह सम्बन्धी स्नानवेला का निवेदन कर रहा है ॥१४॥

विदूषक—(सुनकर) मित्र! बधाई है। स्नपनक आ गया।

नायक—(हर्ष से) यदि ऐसा है तो यहाँ रुकने से क्या लाभ। आओ। पिता जी को प्रणाम कर स्नान भूमि की ओर ही चलें।

मैं समझता हूँ कि परस्पर को देखे हुए, समान रूप, समान अनुराग समान कुल तथा समान अवस्था वाले किन्ही पुण्यवानो का ही समागम (विवाह) होता है ॥१५॥

[सब का प्रस्थान।]

[द्वितीय अक समाप्त।]

—०:०—

*कुछ लोगो मे अब भी यह प्रथा है कि विवाह के दिन वधू के शरीर को लगाने से बचा हुआ उबटन वगैरह वर के पास भेजा जाता है। यहाँ 'स्नपनक' शब्द से वही तात्पर्य है।

तृतीय अंक

विचित्र तथा विह्वल (व्याकुल भाव प्रदर्शन करने वाले) वेष को धारण किये हुए, हाथ में मदिरा का प्याला लिये हुए विट तथा कन्धे पर मदिरा पात्र (सुराही) लिये हुए चेट का प्रवेश।

विट—जो प्रतिदिन मदिरा पान करते हैं तथा जो नित्य लोगों को (उनके) प्रियतम का मिलन कराते हैं वे दोनों देवगण—बलदेव तथा कामदेव मुझे आदरणीय हैं ॥१॥

(झूमता हुआ) मेरा—शेखरक का—जीवन सफल है। जिसके वक्ष: पर दयिता सतत निवास करती है, जिसके मुख में कमल पुष्पों से सुगन्धित मदिरा सदा भरी रहती है तथा जिसके सिर पर निरन्तर शेखरक (मुकुट) विराजमान रहता है, ऐसे मेरा—शेखरक का जीवन सफल है ॥२॥

(लड़खड़ाता हुआ) अरे ! यह मुझे कौन हिला रहा है। (हर्ष से) अवश्य ही नवमालिका मेरी हँसी उड़ा रही है।

चेट—स्वामी, वह यहाँ अब तक नहीं आई है।

विट—(क्रोध से) (रात के) पहले प्रहर में ही मलयवती का विवाह कार्य समाप्त हो गया। इस समय सबेरा होने पर भी वह क्यों नहीं आ रही है ! (सोचकर, हर्ष से) मेरा ऐसा तर्क है कि विवाहोत्सव के समय सभी सिद्ध तथा विद्याधरगण अपनी अपनी प्रियतमाओं को साथ लेकर कुसुमाकर नामक उद्यान में आपान (मदिरापान) का आनन्द लूट रहे होंगे। वहीं पर नवमालिका मेरी प्रतीक्षा करती हुई बैठी होगी। अत. वहीं जाऊँगा। नवमालिका (फूल तथा स्त्री का नाम) के बिना शेखरक (मुकुट तथा विट का नाम) निरर्थक है।

[लड़खड़ाता हुआ जाना चाहता है]

चेट—स्वामी ! इधर आयें। यह कुसुमाकर नामक उद्यान है। स्वामी बैठें।

[दोनों प्रवेश का अभिनय करते हैं।]

[कन्धेपर दो कपड़े रखे हुए विदूषक का प्रवेश]

विदूषक—(मेरे) प्रियमित्र के मनोरथ पूरे हो गये। मैंने भी

सुना है कि प्रिय मित्र कुसुमाकर नामक उद्यान में जायेंगे। अतः वहीं जाऊँगा। (परिक्रमा कर तथा देखकर) यह है कुसुमाकर नामक उद्यान। (प्रवेश कर तथा भ्रमरों के काटे जाने का अभिनय करता हुआ) अरे! ये दुष्ट भ्रमर मेरे पर ही टूट रहे हैं। (अपने शरीर को सूँघकर) अस्तु जान लिया मलयवती के रिश्तेदारों ने मुझे दामाद का मित्र समझकर अत्यन्त आदर से चन्दन पोत दिया और सर पर कल्पवृक्ष के फूलों का मुकुट (विवाह के समय बांधी जाने वाली एक प्रकार की माला) बाँध दिया। वही सम्मान मेरे इस अनर्थ का कारण हो रहा है। अब इस समय क्या करूँ। अथवा मलयवती से प्राप्त हुए इन्हीं दो लाल कपड़ों से स्त्री का वेष धारण कर तथा उत्तरीय (चादर) से घूंघट लेकर जाऊँ। (तब) देखूँगा कि ये दासी के पुत्र (बदमाश) मधुकर मेरा क्या करेंगे। (वैसा करता है)

विट—(गौर से देखकर हर्ष से) अरे चेट! (उंगली दिखाकर मुसुकुराता हुआ) यह नवमालिका आ गई। मुझे देर में आई देखकर (इसीलिये) कुपित होकर दूसरी ओर जा रही है। इससे गले मिलकर (आलिंगन कर) प्रसन्न करूँगा। (सहसा निकट जाकर गले मिलकर उसके मुख में पान देना चाहता है)

विदूषक—(मदिरा की दुर्गन्ध जनाता हुआ नाक दबाकर तथा मुँह मोड़कर) एक मधुकर (भ्रमर) से (किसी प्रकार) छुटकारा पाकर भी इस समय इस दूसरे दुष्ट मधुकर (मद्यपी) के कैसे पाले पड़ गया हूँ।

विट—क्रोध से कैसे मुँह फेर कर बैठी है (प्रणाम करता हुआ विदूषक के पैर अपने सर पर रख कर) नवमालिके! प्रसन्न हो जाओ, प्रसन्न हो जाओ।

[चेटी का प्रवेश]

चेटी—मुझे राजपुत्री के द्वारा आज्ञा दी गई है—"ए नवमालिके! कुसुमाकर नामक उद्यान में जाकर उस उद्यान की रखवाली करने वाली पल्लविका से कहो, "आज तमाल वीथि को खूब सजाओ। मलयवती के साथ दामाद वहाँ जायेंगे।" मैंने पल्लविका को आज्ञा दे दी है। अब रात्रि के विरह के कारण अत्यन्त उत्कंठित प्रियमित्र (प्रियतम) शेखरक को खोजूँगी। (देखकर) यह है शेखरक। (क्रोध से)

यह किसी अन्य स्त्री को प्रसन्न कर रहा है। यही रुक कर देखूँ कि वह कौन है।

विट—(हर्ष से) नवलतिके ! जो घमंडी (शेखरक) ब्रह्मा, विष्णु महेश इन तीनो को भी प्रणाम करना नही जानता वह शेखरक तुम्हारे चरणों पर गिर रहा है ॥३॥

विदूषक—अरे दासी के बच्चे ! उन्मत्त, यहाँ नवमालिका कहाँ है।

चेटी—(गौर से देखकर मुसकुराती हुई) मद के कारण "मैं हूँ" ऐसा समझ शेखरक के द्वारा आर्य आत्रेय प्रसन्न किये जा रहे हैं। अत: बनावटी क्रोध से इन दोनो का उपहास करूँगी।

चेट—(चेटी को देखकर शेखरक को दोना हाथों से हिलाता हुआ) स्वामी ! इसे छोड़ दो। यह नवमालिका नही है। किन्तु यह (नवमालिका) क्रोध के कारण लाल हुई आँखों से देखती हुई इधर ही आ रही है।

चेटी—(निकट जाकर) शेखरक यह कौन है जो पसन्द की जा रही है।

विदूषक—महाशया ! भाग्य का मारा मैं ब्राह्मण हूँ।

विट—(विदूषक को गौर से देखकर) अरे भूरे बन्दर तुम भी शेखरक को ठग रहे हो। अरे चेट पकड लो इसे, जब तक मैं नवमालिका को प्रसन्न कर लूँ।

चेट—जो स्वामी की आज्ञा।

विट—(विदूषक को छोड़कर चेटी के पैरो पर गिरता है) नवमालिके ! प्रसन्न हो जाओ, प्रसन्न हो जाओ।

विदूषक—यह मेरे निकल भागने का (अच्छा) अवसर है। (भागना चाहता है।)

चेट—(विदूषक का यज्ञोपवीत पकड़ लेता है। यज्ञोपवीत टूट जाता है) अरे भूरे बन्दर ! कहां भाग रहे हो। (उसीके उत्तरीय से गला बाँधकर खीचता है।

विदूषक—नवमालिके ! दया करो। मुझे छुड़ाओ।

चेटी—(व्यग्य से मुँह बनाकर) यदि भूमि पर शिर रखकर मेरे पैरों पर गिरो तो—

विदूषक—(क्रोध से कांपता हुआ) अरे ! राजा का मित्र तथा ब्राह्मण होकर मैं (इस) दासी पुत्री के पैरो पड़ूँगा ?

चेटी—(उँगलियों से (हाथ से) धमकाती हुई मुसकुराकर) अभी गिराऊँगी। शेखरक उठो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। (गले लगाती है) किन्तु तुम्हारे द्वारा जामाता का प्रिय मित्र सताया गया है। कदाचित महाराज मित्रावसु यह सुनकर तुमपर कुपित होगे। अत. इसका आदर कर सम्मान करो।

विट—जो नवमालिकाजी की आज्ञा ! (विदूषक को गले लगाकर) आर्य ! तुम मेरे सम्बन्धी (समधी) हो, इसलिये मैंने यह हँसी की थी। (झूमता हुआ) शेखरक ! क्या सचमुच तुमने हँसी की है। (चादर की पिडली बनाकर आसन देता है) समधी यहाँ बैठें।

विदूषक—(स्वगत) इनका नशा उतर गया मलूम होता है। (बैठता है)

विट—नवमालिके तुम भी इसके साथ बैठो, जिससे तुम दोनों का एक साथ सम्मान करूँ।

चेटी—(हँसकर बैठती है।)

विट—(प्याला लेकर) अरे चेट ! इस प्याले को अच्छी मदिरा से भर दो।

[चेट प्याला भरने अभिनय करता है]

विट—(अपने सिर के मुकुट से फूलो को निकाल कर तथा (उनको) प्याले में रखकर घुटनो के बल खड़े होकर नवमालिका को समर्पण करता है। नवमालिके ! (इसका) आस्वाद लेकर इसे (विदूषक को) इस (प्याले) को दे दो।

चेटी—(मुसकुराती हुई) जो शेखरक कहे। [वैसा (आस्वद ले) कर विट को देती है।]

विट—(विदूषक को प्याला देता है।) यह नवमालिका के मुख के सम्बन्ध से अधिक सुगन्धित हुआ मद्य है। शेखरक को छोडकर जिसका आस्वाद उसके पहले किसी दूसरे नही लिया है। इसे पीलो। तुम्हारा और दूसरा सम्मान मैं क्या करूँगा।

विदूषक—(दीन हँसी हँसकर) शेखरक मैं ब्राह्मण हूँ।

विट—यदि तुम ब्राह्मण हो तुम्हारा यज्ञोपवीत कहाँ है ?

विदूषक—यह मेरा यज्ञोपवीत इस चेट के द्वारा खींचा जाकर टूट गया है।

चेटी—(व्यंग से हँसकर) यदि ऐसा है तो कतिपय वेद मन्त्रो को ही कहो।

विदूषक—महाशया❀ इस मदिरा की गन्ध से वेदमंत्र नष्ट हो गये हैं। अथवा आपके साथ वादविवाद करने से क्या लाभ? यह ब्राह्मण तुम्हारे पैरों पर गिर रहा है। (पैरो पर गिरना चहता है)

चेटी—(हाथों से रोककर) आर्य ऐसा मत करें। शेखरक हटो, हटो यह ब्राह्मण है। (विदूषक के पैरो पर गिरती है।) आर्य! क्रोध मत करें (समधी के अनुरूप मैंने यह हँसी की थी)

विट—मैं भी इसे प्रसन्न करूँगा। (पैरो पर गिरता है) आर्य! मैंने मद के आवेग मे जो अपराध किया है उसे आप क्षमा कर दें, जिस (आपके अपराध क्षमा करने) से मैं नवमालिका के साथ मधुशाला में जा सकूँगा।

विदूषक—मैंने क्षमा कर दी! तुम लोग जाओ। मैं भी अपने प्रियमित्र को देखता हूँ।

[विट का चेटी तथा चेट के साथ प्रस्थान]

विदूषक—ब्राह्मण की अकाल मृत्यु टल गई! मद्यपियो के संसर्ग से दूषित हुआ मैं भी इस बावड़ी मे नहाऊँगा। वैसा (स्नान) करता है। (नेपथ्य की ओर देखकर) यह प्रियमित्र मलयवती का हाथ पकड़कर (रुक्मणी का हाथ पकडकर आते हुए कृष्ण की तरह) इधर ही आ रहे हैं। इनका निकट वर्ती होऊँगा।

[विवाह (दूल्हे का) का वेष धारण किये हुए नायक, मलयवती तथा परिजन और परिचारिकाओं का प्रवेश]

नायक—(मलयवती की ओर देखता हुआ हर्ष से)—

(मेरे) देखने पर वह मेरी प्रिया आँखें झुका लेती है। मेरे बोलने पर बोलती नहीं। शय्या पर पराङ्मुख होकर सोती है। बल-पूर्वक आलिंगन करने पर काँपने लगती है। शयनागार से सखियों के जाने पर वह जाना ही चाहती है। इस प्रकार मेरी मुग्धा प्रियतमा

❀धर्म शास्त्र के अनुसार मद्यपियों के सामने वेद पाठ नही करना चाहिये।

(मेरे) प्रतिकूल आचरण से ही मेरे अत्यत आनन्द का कारण हो गई है ॥४॥

(मलयवती की ओर देखता हुआ) प्रिये मलयवती ! प्रत्युत्तर देने की जगह जो मैंने हुकार भरकर (तपस्वी की तरह) मौन धारण किया है। दावाग्नि की ज्वालों की तरह (कष्ट कर) चद्र की धूप से मैंने अपना यह शरीर तपाया और एकाग्र होकर कई दिनों तक मैंने जो (तुम्हारा) ध्यान किया था, यह उसी तप का फल है कि मैं आज यह तुम्हारा मुख देख रहा हूँ।

नायिका—(जनान्तिक) अरी चतुरिके ! आर्य न केवल सुन्दर हैं किन्तु मीठा (प्रिय वचन) बोलना जानते हैं।

चेटी—(हंसकर) अरी उलटा कहने वाली यह सच है। इसमें प्रियवचन क्या है।

नायक—चतुरिके ! कुसुमाकर नामक उद्यान का मार्ग दिखाओ।

चेटी—स्वामी इधर से आयें।

नायक—(परिक्रमा कर तथा नायिका को साथ लेकर) आप धीरे धीरे आयें—

तुम्हारे मध्यभाग (कृश कटि) को कष्ट देने के लिये यह स्तन-युगलो का भार ही पर्याप्त था, फिर यह हार किस लिये पहिरा गया है। नितम्ब के भारा से ये दोनो जघायें आप ही दुखी हो रही है। फिर यह करधनी किस लिए। दोना जघाओ को सभालने की शक्ति पैरो मे नही है, फिर यह नूपुर क्यो पहिरे है। अपने अवयवों से ही तुम सुशोभित हो। ये अलकार दुखदेने वाले क्यो धारण कर रही हो ॥६॥

चेटी—यह वह कुसुमाकर नामक उद्यान है। स्वामी प्रवेश करें। (सब प्रवेश करते हैं।)

नायक—(देखकर) कुसुमाकर नामक उद्यान की शोभा विलक्षण है। यहाँ—

चन्दन के वृक्षो से चूता हुआ रस, लताओ से बने हुए मडप से बनाए गये चित्र विचित्र पत्थर के चबूतरो को शोतल करती है। मयूर निकटवर्ती कृत्रिम प्रपात की ध्वनि सुनकर (बादल की आवाज समझ कर) तांडव नृत्य कर रहे है। जलयन्त्र (मोट) से छोडा गया, अतएव

जोर से गिरने के उत्पीडित पुष्प पराग के द्वारा यह जलप्रवाह वृक्षों के थालों को भरता हुआ जोर से चल रहा है ।।७।।

और भी—ये अपनी गुनगुनाहट से लता मडप की भूमि को गुँजारित करने वाले, चित्रविचित्र पुष्प पराग के द्वारा वस्त्र परिवर्तन का खेल प्रगट करने वाले ये भ्रमर चारो ओर (मद्यपी की तरह) अपनी स्त्रियो के साथ पर्याप्त मधुरस (मदिरा) पाते हुए मदिरा पान का उत्सव मना रहे हैं ।।८।।

विदूषक—(निकट जाकर) आपकी (नायक की) विजय हो, नायिका का कल्याण हो ।

नायक—मित्र बहुत देर के बाद दिखाई पड़ हो ।

विदूषक—मित्र मै जल्दी ही आ गया होता किन्तु विवाह महोत्सव के लिये एकत्रित हुए सिद्ध तथा विद्याधरो के मदिरा पान को देखने के कौतूहल से घूमते हुए मुझे इतनी देर हो गई । तुम भी उसे देखो ।

नायक—जैसा तुम कहो ! (चारो ओर देखकर) मित्र देखो । देखो ।

हरिचन्दन (सुवर्ण द्रव की तरह एक रस) को सारे शरीर में लगाये हुये, कल्पवृक्ष के फूलो की माला धारण किये हुए तथा मणि विभूषणो की प्रभा के मिश्रण से चित्रविचित्र वस्त्रो वाले ये विद्याधर चन्दन वृक्ष की छाया मे सिद्धजनो के साथ आपस मे मिलकर प्रियतमाओ के पीने से बचे हूए मद्य को पी रहे हैं ।।९।।

आओ हम लोग भी उस तमाल वीथी की ओर जायें । (परिक्रमा करते है ।)

विदूषक—यह तमाल वीथी है । इतना चलकर आप थकी सी दिखाई दे रही है । अत यही स्फटिक मणि की शिला पर बैठ कर विश्राम करें ।

नायक—मित्र ! ठीक पहिचाना ।

यह प्रिया का मुख कपालद्वय की क्रान्ति से चन्द्र को जीतकर अब धूप से लाल हुआ निश्चय ही कमल को जीतना चाहता है ।।१०।।

(नायिका के हाथ पकड़कर) प्रिय यहाँ बैठो ।

नायिका—जो आर्य पुत्र की आज्ञा ।

[सब बैठते हैं]

नायक—(नायिका का मुख उठाकर देखता हुआ) प्रिये ! हम लोगों ने तुम को कुसुमाकर उद्यान देखने के लिये अकारण ही कष्ट दिया है।

क्योंकि—यह तुम्हारा भृकुटि रूपी लता से शोभित होने वाला तथा लाल अधर पल्लवों से युक्त मुख नन्दन नामक उद्यान है। अतः और अन्य सब केवल जंगल ही जंगल है ॥११॥

चेटी (मुस्कुराती हुई विदूषक को लक्ष्य कर) तूने सुना ! राज पुत्री का वर्णन कैसे किया जा रहा है। मैं तुम्हारी तारीफ करूँगी।

विदूषक—(हर्ष से) मेरा सौभाग्य है आप ऐसी कृपा करें जिससे यह (मेरा मित्र) मुझे ऐसा न कहे कि तुम भूरे बन्दर हो।

चेटी—आर्य ! मैंने विवाहोत्सव में जागने के कारण झपकियाँ लेते हुए (आँखें बन्द किये हुए) (अतएव) सुशोभित तुम्हें देखा है। वैसे ही हो जाओ जिससे मैं तुम्हारा* वर्णन करूँ।

विदूषक—(वैसा करता है)

चेटी—(स्वगत) जब तक यह आँखें बन्दकर बैठा है तभी तक नीलरस की तरह तमाल पल्लवों के रससे इसका मुँह काला कर दूँगी। (उठकर) तमाल पल्लवों को निचोड़ कर विदूषक का मुँह काला करती है)

[नायक तथा नायिका विदूषक की ओर देखते हैं]

नायक—मित्र धन्य हो ! जो हम लोगो के रहने पर इस प्रकार वर्णन किये जाते हो।

[नायिका नायक के मुख को देखकर मुकुराती है]

नायक—(नायिका के मुख को देखकर)—

हे मुग्धनेत्र वाली ! तुम्हारे अधर रुपी पल्लवो से यह मुसकुराहट रुपी फूल। किन्तु इसका फल अन्यत्र, मेरी आँखो को जो तुम्हारी ओर देख रही हैं, हो रहा है। (तुम्हें देखकर मेरे नेत्र सफल हैं) ॥१२॥

विदूषक—महाशया ! यह तुमने क्या किया ?

---

*मूल में (वर्णयामि पइ) श्लिष्ट अर्थ को सूचित करता है। 'रंगना तथा वर्णन करना।' चेटी अभिप्राय रंगने से है और विदूषक उसका अर्थ 'वर्णन करना' समझता है।

चेटी—तुम वर्णित किये गये हो (रंगे गये हो)

विदूषक—(हाथ से मुँह पोंछकर तथा क्रोध से डंडा उठाकर) दासी पुत्री ! यह राजमहल है। (यहाँ) तुम्हारा मैं क्या कर सकता हूँ। (नायक की ओर लक्ष्यकर) आप लोगों के सामने इस दासी पुत्री के द्वारा मैं अपमानित किया गया हूँ। (अत:) मेरे यहाँ रहने से क्या लाभ ? दूसरी जगह जाऊँगा। (प्रस्थान)

चेटी—मुझपर आर्य आत्रेय कुपित हो गये हैं। जाकर उनको प्रसन्न करूँगी।

नायिका—चतुरिके क्या मुझे अकेली छोड़कर चली जाओगी ?

चेटी—(नायक की ओर लक्ष्यकर मुसकराती हुई) इस प्रकार अकेली चिरकाल तक रहो। (प्रस्थान)

नायक—(नायिका के मुख की ओर देखकर)—

दिनकर के किरणों के स्पर्श से रक्तवर्ण की शोभा धारण करता हुआ, दन्त किरणों की प्रभा से केसर (वर्ण) को स्पष्ट करता हुआ यह तेरा मुख सचमुच कमल के समान है। अरे मुग्धे ! किन्तु इसमें मधुपान करने वाला मधुकर (ही) दिखाई नही दे रहा है ॥१३॥

नायिका—(हँसकर मुँह हटा लती है)

नायक—(फिर वही श्लोक कहता है)

चेटी—(परदा हटा कर प्रवेशकर निकट जा करके) ये आर्य मित्रावसु किसी कार्य से कुमार से मिलना चाहते हैं।

नायक—प्रिये तुम अपने घर जाओ। मैं भी मित्रावसु से मिल कर शीघ्र ही आ रहा हूँ।

[नायिका का चेटी के साथ प्रस्थान]

[मित्रावसु का प्रवेश]

मित्रावसु—मैं उस जीमूतवाहन के शत्रुओं को बिना मारे किस प्रकार निर्लज्ज होकर यह कहूँगा कि तुम्हारा राज्य शत्रु ने हरण कर लिया है ॥१४॥

बिना सूचित किए जाना उचित नहीं है इसलिये सूचना देकर जाऊँगा।

नायक—(मित्रावसु की ओर देखकर) मित्रावसु ! यहाँ बैठो।

मित्रावसु—(देखकर बैठता है)।

नायक—(ध्यान पूर्वक देखकर) मित्रावसु ! घबराए ऐसे प्रतीत हो रहे हो।

मित्रावसु—दुष्ट मतंग के विषय में घबराहट किस बात की ?

नायक—मतंग ने क्या किया ?

मित्रावसु—उसने अपने नाश के लिये आपके राज्य पर आक्रमण किया है।

नायक—(हर्ष से) (स्वगत) क्या यह सच होगा ?

मित्रावसु—अतः कुमार उसका नाश करने की आज्ञा दें। अधिक क्या कहूँ—

समस्त गगन मार्ग का आक्रमण करनेवाले इधर दौड़ते हुए बिमानों के द्वारा वर्षा काल की तरह सूर्य प्रकाश से रहित अतएव दिन को अन्धकारमय करते हुये ये सिद्धगण इस समय तुम्हारी आज्ञा पा कर युद्ध के लिये चले गये हैं। अब प्रमुखशत्रु के नाश से भयभीत होकर बिनम्र हुए राजाओं से युक्त तुम्हारा स्वराज्य सिद्ध ही है ॥१५॥

अथवा—

इस सेना समूह से क्या लाभ ? अत्यन्त वेग से निकली हुई तलवार की आभा से, जो सिंह की आयाल की तरह उज्वल है, सिंह के द्वारा उन्मन्त हाथी की तरह अकेले मेरे द्वारा ही उभ्यासित हुए उस दुष्ट मतंग को संग्राम में एकाएक झपट कर मारा गया ही समझ लो ॥१६॥

नायक—(कानो में उँगली डालकर) (स्वगत) अरे रे ! अत्यन्त कठोर बातें कहीं। अथवा ऐसा हो (प्रकट) मित्रावसु ! तुम्हारे लिये यह क्या है। तुझ ऐसे पराक्रमी के लिये इससे भी अधिक करना सम्भव है।—

किन्तु जो बिना मांगे ही दया के कारण दूसरों के लिये अपने शरीर को भी दे सकता है, वह मैं राज्य के लिये प्राणियों के वध के समान क्रूर कार्य के लिये कैसे अनुमति दे सकता हूँ ॥१७॥

और भी *क्लेशों को छोड़कर मैं किसी दूसरे को शत्रु समझता

---

*सांसारिक झंझटें अथवा योगशास्त्र में वर्णित 'अविद्यास्मिता रागद्वेशाभि निवेगान' नामक पाँच क्लेश।

ही नही। यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो राज्य के लिये क्लेशों के दास बने इस तपस्वी पर दया करो।

मित्रावसु—(क्रोध तथा ईर्षा के साथ) इस प्रकार हमलोगों पर उपकार तथा कृतघ्न मनुष्य पर क्यों न दया की जाय ?

नायक—(स्वगत) नूतन कोप से इसका चित्त उत्क्षुब्ध है। वह इस समय दूसरी ओर नही लगाया जा सकता। ऐसा हो (प्रकट) मित्रावसु ! उठो हमलोग भीतर चलें वही पर मैं तुम्हें समझाऊँगा। इस समय दिन बीत चुका है।

क्योकि—रात्रि के समय संकुचित हुए कमलों को प्रति दिन विकसित करने वाले, दिशाओ को अपने प्रकाश से पूरित करने का एकमात्र कार्य करने वाले, अपनी किरणों से सम्पूर्ण विश्व को प्रसन्न करने वाले, स्तुति करते हुए सिद्धगणों द्वारा देखे गये तथा अस्ताचल को जाते हुए ये भगवान सूर्य, जिनका एकमात्र परोपकार के लिये प्रयत्न होता है, धन्य हैं* ॥१८॥

[सब का प्रस्थान]

[तृतीय अंक समाप्त]

—०:०—

---

*मूल श्लोक की रचना इस प्रकार हुई है जिससे संसार का उपकार करने वाले एक पुरुष (जीमूत वाहन) की ध्वनि होती है।

चतुर्थ अंक

(दो लाल कपड़ों को लिये हुए कंचुकी तथा प्रतिहार का प्रवेश)

कंचुकी*—मैं, जिसने (राजा) के अन्तःपुर की पूरी व्यवस्था कर दी है, तथा जो पग पग पर होने वाली गलतियों को बचा रहा है, इस समय वृद्धावस्था के कारण हाथ में दण्ड लेकर राजा के सम्पूर्ण चरित्र का अनुभव कर रहा हूँ ॥१॥

प्रतिहार—आर्य वसुभद्र ! आप कहाँ जा रहे हैं ?

कंचुकी—महारानी मित्रावसु की माता ने मुझे आज्ञा दी है—"कंचुकी ! तुम्हें दस दिन तक मलयवती तथा जामाता के लाल कपड़े ले जाने हैं।" "कन्या ससुराल में है, और आज जीमूतवाहन भी युवराज के साथ समुद्र के किनारे को देखने (घूमने) गये हैं।" ऐसा सुना जाता है। समझ में नहीं आ रहा है कि मैं राजपुत्री के पास जाऊँ या जामाता के पास।

प्रतिहार—आर्य ! राजपुत्री के पास ही जाना उचित है। कदाचित इस समय जामाता वहाँ स्वयं आ गये हों।

कंचुकी—ठीक कहा, किन्तु आप कहाँ जा रहे हैं।

प्रतिहार—महाराज वसु ने आज्ञा दी है कि—"सुनन्द जाओ। मित्रावसु से कहो कि इस दीप प्रतिपदा के उत्सव के समय मलयवती तथा जामाता को कुछ देना है। (अत तुम) आकर उत्सव के अनुरूप (देने का) कुछ विचार करो।" राजपुत्री के पास आर्य जायँ। मैं भी मित्रावसु को बुलाने जा रहा हूँ।

[दोनों का प्रस्थान]

[विष्कम्भक समाप्त]

---

*मूल में 'दण्डनीति' के द्वारा दो अर्थों को प्रगट किया गया है। एक 'कंचुकी' के पक्ष में तथा दूसरा 'राजा' के पक्ष में। राजा अपनी प्रजा की सम्पूर्ण व्यवस्था करता है। समय-समय पर सेवकों की गलतियों को दूर करता है। तथा अपराधियों के लिये 'दण्डनीति' का आश्रय लेता है।

⊙ सम्भवतः यह उत्सव आजकल की तरह दीपावली की प्रतिपदा को होता था।

[जीमूतवाहन तथा मित्रावसु का प्रवेश]

नायक—शय्या, हरी हरी घास है, आसन स्वच्छ शिला है, वृक्षों के नीचे घर है, झरने का ठण्डा पानी पीने के लिए है, कन्द खाने के लिये हैं तथा मित्र, वनचर मृग हैं। इस प्रकार बिना प्रार्थना किये ही सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त होने वाले वन में जहाँ याचकों का कठिनता से प्राप्त होना यही एक दोष है, परोपकार का कार्य करने वाले हम लोग वृथा ही रहते हैं ॥२॥

मित्रावसु—(ऊपर की ओर देखकर) कुमार ! शीघ्रता करें, यह ज्वार का समय है।

नायक—(सुनकर) ठीक पहिचाना—

गरजते हुए जलहस्तियों के द्वारा वेग से (सूड़ के) आस्फालन के कारण अत्यन्त उद्धत, सब पर्वतों की कंदराओं तथा गुफाओं को प्रतिध्वनित करती हुई, तथा कानों के परदों को फाड़ देनेवाली यह ध्वनि जोर से हो रही है। इससे प्रतीत होता है कि सम्भवतः उछलते हुए असंख्य शख-मण्डलों से युक्त यह समुद्र की बेला (किनारा-ज्वार) आ रही है ॥३॥

मित्रावसु—देखो ! वेला आ ही गई। अनेक लवंगलता के पल्लवों को खानेवाले हाथी तथा मकर आदि जलजन्तुओं के उद्वमन से सुगन्धित जलवाली तथा रत्नों के प्रभा से रंजित यह समुद्र वेला शोभित हो रही है ॥४॥

आओ इस जल प्रवाह के मार्ग से हट कर इसी गिरिशिखरों के निकटवर्ती मार्ग पर घूमें।

नायक—मित्रावसु ! देखो ! शरद्कालीन अतएव उज्वल बादलों से आच्छादित ये मलयपर्वत की चोटियाँ हिमालय के शिखर की शोभा को धारण कर रही हैं।

मित्रावसु—यह मलयपर्वत की चोटियाँ नहीं है, किन्तु ये सर्पों की हड्डियों के ढेर हैं।

नायक—(उद्वेग से) दुःख है। ये इतने को एक साथ कैसे हुए ?

मित्रावसु—कुमार ! ये एक साथ हुए मृत्यु नहीं हैं। जैसा यह

है। सुनो ! "—प्राचीन समय मे अपने पंखों की वायु से समस्त समुद्र के जल को हटाने वाला गरुड पाताल से सर्पों को प्रतिदिन अत्यन्त वेग से निकाल कर खाता था।"

नायक—(उद्वेग से) दुःख है। अत्यन्त दुष्कर कार्य वह करता था। उसके आगे ?

मित्रावसु—उसके पश्चात समस्त सर्पो के नाश की शंका करने वाले वासुकी ने गरुड़ से कहा।

नायक—(आदर के साथ) क्या, मुझे पहले खाओ यह।

मित्रावसु—नहीं, नहीं।

नायक—फिर और क्या ?

मित्रावसु—यह कहा—"तुम्हारे अत्यन्त वेग से आने के डर से हजारों सर्प स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं। तथा बच्चे मर जाते हैं। इस प्रकार सन्तति के नाश से हमारे समान ही तुम्हारे भी उस स्वार्थ की हानि होती है, जिस स्वार्थ के लिये तुम नागलोक पर आक्रमण करते हो। इसलिये मैं यहाँ प्रतिदिन एक एक नाग भेजा करूँगा।"

नायक—नाग के राजा ने (वासुकी ने) तुच्छता से सर्पो की रक्षा की।

उसकी दो हजार जिह्वाओ के बीच क्या एक भी जिह्वा ऐसी नही कि जिससे यह कहे कि मैंने आज एक सर्प की रक्षा के लिये सर्पों के शत्रु गरुड़ को अपने (शरीर) को समर्पित दिया है ॥५॥

मित्रावसु—पक्षिराज ने यह स्वीकार कर लिया।

सर्पराज—(वासुकी) के द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था की जाने पर पक्षिराज गरुड जिन सर्पों को खाता है उन्ही के ये बर्फ की शोभा को धारण करने वाले अस्थि समूह दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हैं ॥६॥

नायक—(आश्चर्य है)

सम्पूर्ण अपवित्रताओं का खजाना कृतघ्न तथा नाशवन्त शरीर के लिये भी मूर्ख लोग कितना पाप करते हैं ॥७॥

अहो अत्यन्त दुख की बात है कि नागों की यह विपत्ति समाप्त नहीं होने वाली है। (स्वगत) अपने शरीर को समर्पण कर क्या मैं एक नाग के प्राण भी नहीं बचा सकता हूँ।

[प्रतिहार का प्रवेश]

प्रतिहार—पर्वत के शिखर पर चढ़ चुका हूँ। मित्रावसु को खोजूँ। (परिक्रमा कर) ये मित्रावसु जामाता के पास बैठे हैं। निकट जाकर) दोनो कुमारो की विजय हो।

मित्रावसु—सुनन्द! यहाँ क्यो आये हो?

प्रतिहार—(कान में कहता है)

मित्रावसु—कुमार! मुझे पिता जी बुला रहे हैं।

नायक—जाइये।

मित्रावसु—अत्यन्त विघ्न से युक्त इस प्रदेश में कुमार अत्यन्त देर तक न रहें।

[प्रस्थान]

नायक—तब तक मैं भी इस पर्वत के शिखर पर से समुद्र की शोभा को देखूँगा। (परिक्रमा करता है)

[नेपथ्य में]

हा पुत्र शंखचूड! मारे जाते हुए आज मैं तुम्हे कैसे देखूँगी।

नायक—(सुनकर) अरे! यह करुण प्रलाप किसी स्त्री की तरह मालूम होता है। यह कौन है? इसे डर किससे है? यह मैं स्पष्ट जान लूँगा। (परिक्रमा करता है)

इसके अनन्तर रोती हुई वृद्धा को पीछे लिये हुए शखचूड तथा दो वस्त्रों को छिपाये हुये किंकर का प्रवेश।

वृद्धा—(आँखो मे आँसू भरकर) हा पुत्र शखचूड! मारे जाते हुए आज मैं तुम्हें कैसे देखूँगी। (ठुड्डी पकड़कर) इस मुखचद्र से रहित पाताल इस समय अंधकारमय हो जायगा।

शंखचूड—माँ! इस घबड़ाहट से मुझे अधिक पीड़ित क्योकर रही हो?

वृद्धा—(गौर से देखकर) पुत्र के शरीर पर हाथ फेरती हुई) हा पुत्र! तुम्हारे सुकुमार शरीर को, जिसको अब तक सूर्य के किरणों ने भी नहीं देखा है, वह घृणित हृदय वाला गरुड कैसे खायेगा? (गले लगा कर रोती है)

शंखचूड—मा! विलाप से क्या लाभ?

उत्पन्न होने पर किसी दाई की तरह अनित्यता ही प्रथम (बच्चे

को) गोद में लेती है। उसके पश्चात् माता। अतः शोक की क्या आवश्यकता ॥८॥

(जाना चाहता है।)

वृद्धा—पुत्र क्षण भर रुको जब तक मैं तुम्हारा मुख देखूँगी।

किंकर—आओ! कुमार शंखचूड़ आओ! (इस प्रकार) बोलने वाली तुम्हारी यह माता क्या जाने? पुत्र स्नेह से मोहित है। राज कार्य को नही समझती।

शंखचूड़—यह मैं आ रहा हूँ।

किंकर—(सामने देखकर) मेरे द्वारा यह वध्य शिला के निकट लाया गया है। इसे वध्य चिन्ह* देऊँगा।

नायक—यह स्त्री है! (शंखचूड़ को देखकर) अवश्य ही इसका लड़का होगा। (यह) क्यों रो रहा है। (चारो ओर देखकर) इसके भय का कारण नहीं देख रहा हूँ। इसे भय किसे है? (निकट चलूँ) इन लोगो की बात चीत चल रही है। कदाचित इससे इसका कारण स्पष्ट हो जायगा। अतः वृक्ष के पीछे छिपकर सुनूँगा।

किंकर—(आँखो मे आँसू भरकर तथा हाथ जोड़कर) कुमार शंखचूड़। यह स्वामी की आज्ञा है। इसलिये मेरे द्वारा इस प्रकार की निष्ठुर सलाह दी जा रही है।

शंखचूड़—भद्र कहो।

किंकर—"नागराज वासुकी आज्ञा दे रहे हैं।"—

शंखचूड़—(मस्तक से दोनों हाथों की अंजुली लगाकर) देव क्या आज्ञा दे रहे हैं?

किंकर—"इन दोनों वस्त्रों को पहनकर वध्य शिलापर चढ़ जाओ जिससे रक्त वस्त्र को देखकर गरुड़ तुम्हें खायेगा।"

नायक—(सुनकर) क्या यह वासुकी के द्वारा निकाला गया है?

किंकर—कुमार! इन दो वस्त्रों को लो (देता है।)

शंखचूड—(आदर पूर्वक) लाओ (लेकर) स्वामी की आज्ञा मेरे सिर पर है।

---

*लाल कपड़ों को पहने हुए सर्प गरुड़ के भक्ष हैं इस प्रकार की सन्धि वासुकी ने गरुड़ से की थी।

वृद्धा—(पुत्र के हाथ में कपड़े देखकर छाती पीटती हुई) हा वत्स ! यह तो बज्रपात के समान प्रतीत होता है। (मूर्छित होती है।)

किंकर—गरुड़ के आने की वेला निकट है ! अतःशीघ्र जाऊँगा। (प्रस्थान)

शंखचूड़—माँ ! सावधान हो जाओ।

वृद्धा—(होश में आकर तथा आँखों में आँसू भरकर) हां पुत्र सैकड़ों मनोरथों से पाये गये तुम्हें फिर कहाँ देखूँगी। (गले लगाती है)

नायक—अहो ! गरुड़ की निष्ठुरता। और भी—

"पुत्र तुम्हें कौन बचाने वाला है" इस प्रकार अनेक प्रलाप करके अश्रुधारा को बहाती हुई, बारंबार मोहित होती हुई तथा चारों ओर विकलता से आँखें दौड़ाती हुई इस माता के गोद में बैठे हुए इस बालक को दया का त्याग कर खाते हुये पक्षिराज की चोंच ही नहीं हृदय भी वज्र से बनाया गया मालूम होता है ॥९॥

शंखचूड़—(अपने आँसुओं को रोकता हुआ) माँ अत्यन्त विकलता से क्या लाभ ?—

जिन अत्यन्त दयालु (लोगों ने) याचकों की प्रार्थना कभी विफल न की, जिन्होंने अत्यन्त कारुण्य के कारण परार्थ के सामने अपने स्वार्थ की चिन्ता न की तथा जो सदा दूसरों के दुख से दुखित होते थे, वे साधु अब अस्त हो गये हैं। (संसार में नहीं हैं) माँ अब इन आँसुओं को रोको। अब किसके सामने रोया जाय ॥१०॥

धीरज धरो ! धीरज धरो !

वृद्धा—(आँखों में आँसू भरकर) क्या धीरज धरूँ। तुम एकलौते बेटे हो इसलिये क्या दया से रहित नागराज ने तुम्हें भेजा है। हां इस समस्त संसार में मेरे लड़के का ही स्मरण किया गया। मैं सर्वथा अभागिनी हूँ। (मूर्च्छित होती है)

नायक—(अत्यन्त करुणा से)—

अपने बाँधवों के द्वारा छोड़े गये तथा दुखी इसे जिसका मरण अत्यन्त निकट है यदि मैं न बचाऊँ तो मेरे शरीर धारण करने से क्या लाभ ॥११॥

अतः निकट जाता हूँ ।

शंखचूड़—माँ ! अपने को दृढ़ करो ।

वृद्धा—हां ! पुत्र जब नागलोक की रक्षा करने वाले वासुकी के द्वारा छोड दिये गये हो तब दूसरा कौन तुम्हारी रक्षा करेगा ।

नायक—(निकट जाकर) मैं ! मैं !

वृद्धा—(नायक को देखकर) (घबडाती हुई उत्तरीय से पुत्र को छिपाकर, नायक के निकट जाकर तथा घुटने टेककर) विनतानन्दन मुझे मारो । मैं नागराज के द्वारा तुम्हारे आहार के लिये भेजी गई हूँ ।

नायक—(आँखों में आँसू भर कर) कैसा पुत्र प्रेम है ।

मैं समझता हूँ कि पुत्र-स्नेह के कारण हुई इसकी इस विकलता को देखकर कठोर हृदय वाला सर्प शत्रु (गरुड भी) इस पर दया करेगा ॥१२॥

शंखचूड़—माँ ! डरो मत । यह नागशत्रु नही है । देखो ।

बड़े बड़े सर्पों के मस्तकों का भेद करने से निकली हुई रक्त धारा से चर्चित चोंच वाले गरुड कहाँ, और कहाँ चंद्र के समान सौम्य स्वभाव स्वरूप तथा आकृति धारण करने वाले ये साधु ॥१३॥

वृद्धा—मैं तुम्हारे मरण से डरी हुई सबको गरुड़मय देखती हूँ ।

नायक—माँ ! मत डरो । यह मैं विद्याधर तुम्हारे लड़के की रक्षा के लिये ही आया हूँ ।

वृद्धा—(हर्ष से) फिर फिर ऐसा कहो ।

नायक—माँ केवल कहने से क्या लाभ ? मैं कृती से ही पूरा करूँगा ।

वृद्धा—(मस्तक से अञ्जुली लगाकर) पुत्र चिरंजीव हो !

नायक—

माँ इस वध्य चिह्न को मुझे दे दो जिसे पहनकर मैं तुम्हारे पुत्र की रक्षा के लिए विनतानन्दन को (गरुड़ को) अपना देह खाने के लिये दे दूँगा ॥१४॥

वृद्धा—(कानों में अंगुली डालकर) अमंगल नष्ट हो । तुम भी शंखचूड़ की तरह ही मेरे पुत्र हो अथवा शंखचूड़ से बढ़कर हो जो

इस प्रकार बांधवों के द्वारा छोड़े गये भी मेरे पुत्र को अपने शरीर के दान से बचाना चाहते हो।

शंखचूड़—अहो इस महापुरुष का चरित्र संसार से विपरीत है। क्योंकि,

प्राचीन समय में जिन (प्राणों) की (रक्षा) के लिये विश्वामित्र ने चाण्डाल की तरह कुत्ते का मांस खाया, जिस लिये गौतम ने अपना उपकार करने वाले नाडिजंघ नामक बक को मारा तथा जिस हेतु यह काश्यप का पुत्र तार्क्ष्य—गरुड़ सर्पों को प्रतिदिन खाता है, यह साधु उन्हीं प्राणों को दया से प्रेरित होकर तृण की तरह समझकर दूसरों के लिये दे रहा है ॥१५॥

(नायक के प्रति) महापुरुष ! अपने शरीर को समर्पित करने के लिये तैयार होकर तुमने मुझपर निश्छल दया प्रगट कर दी। यह दुराग्रह मत करो। देखो—

मेरे समान क्षुद्रजन्तु उत्पन्न होते हैं तथा मरते हैं। दूसरो के लिये कमर कसे हुए तुम्हारे ऐसे लोग बारम्बार कहाँ पैदा होते हैं ॥१६॥

इस दुराग्रह से क्या लाभ ? इस प्रयत्न को छोड़ दीजिये।

नायक—शंखचूड ! चिरकाल के अनन्तर अवसर पाने वाले तथा दूसरों का काम करने की इच्छा रखने वाले मेरे काम में विघ्न मत करो। सोच विचार मत करो। मुझे यह वध्य चिन्ह दे दो।

शंखचूड़—महापुरुष ! इस प्रकार आत्मा को कष्ट देने से क्या लाभ ? क्या शखचूड शंख की तरह स्वच्छ शंखपाल के कुल को कलंकित करेगा ? यदि आपको हम पर कृपा करनी ही है तो यह (मेरी माँ) इस विपत्ति से दुखित होकर प्राण त्याग न करे ऐसा कोई उपाय सोचिये।

नायक—इसमें सोचना क्या है ? उपाय सोच ही लिया है। वह तुम्हारे वश में है।

शंखचूड़—कैसे ?

नायक—जो तुम्हारे मरने पर मरती है, तुम्हारे जीवित रहने पर जीवित रहती है उसे यदि तुम जीवित रखना चाहते हो तो मेरे प्राणों से अपनी रक्षा करो ॥१७॥

यही उपाय है। वध्य चिह्न शीघ्र दो। जिससे अपने शरीर को

ढाककर वध्यशिला पर चढ़ जाऊँगा। तुम भी माता को आगे कर इस प्रदेश से लौट जाओ। कदाचित् माता वध्य-स्थान को देखकर स्त्रियों की स्वाभाविक कातरता से अपने प्राण छोड़ देगी। क्या तुम मरे हुए सर्पों के अनेक कंकालों से भरे हुए महाश्मशान को नहीं देखते। वैसे ही—

चलायमान चोंचों के द्वारा उठाये हुए किन्तु आधे रास्ते में ही गिरे हुए मांसखड के कवल को पुनः लेने की इच्छा करने वाले अतएव फैलाये हुए पंखों को फड़फड़ाते हुए गृद्धों के द्वारा किये गये अत्यन्त अध.कार युक्त (इस श्मशान में) निरंतर बहते हुए प्रचुर मेद की गंध के कारण कच्चे मांस की तरह गन्ध वाली इस धारा में शृगालियों के मुख से होती हुई कै (जल में) घम् शब्द कर गिरती हुई अग्नि-ज्वालाओं की श्रेणियों की तरह शब्द कर रही है ॥१८॥

शंखचूड़—देखता क्यों नहीं हूँ।

हारभूत सर्प के कारण प्रतिदिन विनायक (गणेश) का प्रेम संपादन करने वाला चन्द्रमा की तरह अस्थि-कपाल धारण किये हुये रौद्र (शकर) के शरीर की तरह यह श्मशान प्रतिदिन सर्पों का भक्षण करने के कारण पक्षियो के राजा (गरुड) का प्रेम सपादन करने वाला चन्द्रमा की तरह स्वच्छ (सर्पों की) हड्डियो तथा खोपड़ियों से युक्त अत्यन्त भयंकर है*॥१६॥

नायक—शंखचूड ! जाओ। इस शान्ति के समय उपयुक्त वचनों से क्या लाभ ?

शंखचूड़—गरुड़ के आगमन का समय अत्यन्त निकट है (मां के सामने घुटने टेकर) मां ! अब तुम भी लौट जाओ।

मां ! जिस जिस योनि में मैं उत्पन्न होऊँ हे पुत्र पर प्रेम करने वाली ! उस उपस्थिति में तुम्हीं मेरी माता होओ।

[पैरों पर गिरता है]

वृद्धा—(आँखों में आँसू भरकर) क्या ये ही इसके अन्तिम वचन हैं। पुत्र ! तुम्हें छोड़कर मेरे पैर अन्यत्र जाने में समर्थ नहीं है। मैं यहीं तुम्हारे साथ रहूँगी।

---

*यहाँ मूल में शब्द श्लेष अलंकार के द्वारा शंकर का शरीर तथा श्मशान का वर्णन किया गया है।

शंखचूड—(उठकर) मैं भी शीघ्र निकटवर्ती भगवान दक्षिण गोकर्ण की प्रदक्षिणाकर स्वामी की आज्ञा का पालन करूँगा।

[दोनो का प्रस्थान]

नायक—कष्ट है मेरी अभिलाषा पूर्ण न हुई। अब यहाँ क्या उपाय है?

कंचुकी—(वेग से प्रवेश कर) ये दो वस्त्र हैं।

नायक—(देखकर हर्ष से) (स्वगत) सौभाग्य से बिना सोचे लाये गये दो रक्त वस्त्रों ने मेरी अभिलाषा पूर्ण कर दी।

कंचुकी—ये दो वस्त्र महारानी मित्रावसु की माता ने कुमार के लिये भेजे हैं।

नायक—(आदर के साथ) लाओ।

कंचुकी—(देता है)

नायक—(लेकर स्वगत) मलयवती से हुआ मेरा विवाह सफल हो गया। (प्रकट) कंचुकी! जाओ। महारानी से मेरा प्रणाम कहना।

कंचुकी—जो कुमार की आज्ञा।

[प्रस्थान]

उचित समय पर आये हुये यो दो रक्त वस्त्र दूसरों के लिये अपने शरीर का त्याग करने वाले मेरे अत्यन्त प्रीति के पात्र बन रहे है ॥२१॥

(दिशाओं को देखकर) यह मलयपर्वत के शिलासमूह को चलाने वाला प्रचंड बवंडर चल रहा है। जिसमें मैं समझता हूँ कि पक्षिराज निकट हैं। जैसे—

प्रलयकालीन बादलों की तरह (गरुड़ की) विशाल तथा काली काली पक्ष पंक्तियाँ आकाश को आच्छादित कर रही हैं। (गरुड़ के) वेग से आने के कारण उछलता हुआ समुद्र का जल किनारे पर टकरा रहा है। उसी समय प्रलयकाल की शंका उत्पन्न करते हुये (अतएव) दिशाओं के द्वारा भयभीत होकर देखे गये द्वादश सूर्य की तरह आभा वाले (गरुड़) अपने शरीर की (सुनहली) आभा से दसों दिशाओं को सुनहला बना रहे हैं ॥२२॥

जब तक यह शंखचूड़ नहीं आ रहा है तब तक मैं इस बध्य-

शिला पर चढ़ जाऊँ। (वैसा कर तथा बैठकर स्पर्श सुख का अभिनय करता है) इनका स्पर्श कैसा है।

मैं समझता हूँ मलयचन्द के रस से (अपने शरीर को) विलेपित की हुई मलयवती उतना सुख नहीं देती जितनी इच्छित काम सिद्ध करने के लिये स्पर्श की गई यह बध्यशिला मुझे सुख दे रही है ॥२३॥

अथवा मलयवती ही क्या ?।

बचपन में माता की गोद में निःशंक सोकर मैंने वह सुख प्राप्त नहीं किया जो सुख मैंने इस वध्यशिला की गोद में पाया है ॥२४

यह गरुड़ आ गये। अपने शरीर को ढाँक लूँ। (वैसा करता है)

गरुड़—चन्द्रबिम्ब को एक ओर हटाकर भय के कारण सिमट कर बैठे हुये शेष के शरीर को (और भी संकुचित करते हुए, मेरे त्राण के कारण, रथ के घोड़ों ने अपने मार्ग को जोड़ देने कारण सूर्य के किंचित हट जाने से मेरे अग्रज (अरुण) के द्वारा सानन्द देखा गया, शरीर के अवयवों से मिलते हुए बादलों के समूह से विस्तृत होते हुए पंखों से युक्त तथा सर्पों को खाने की लालसा रखने वाला यह मैं (समुद्र के) तटपर वर्तमान मलयपर्वत पर क्षणभर में पहुँच गया ॥२५॥

नायक—(सन्तोष से)

आज सर्प कि रक्षा करते हुए मैंने अपने शरीर के दान से जो पुण्य प्राप्त किया है उससे जन्म जन्मान्तर में मुझे इसी प्रकार शरीर की प्राप्ति दूसरों के लिये हो ॥२६॥

गरुड़—(नायक को ध्यान से देखकर)

अपने से अतिरिक्त शेष सर्पों की रक्षा करने के लिये इस वध्य शिलापर निश्चेष्ट गिरे हुए, लाल वस्त्र से सर्वाङ्ग को ढके हुए मेरे भय से विदीर्ण हुए हृदय से चूने वाले रुधिर से लिप्त की तरह इस सर्प को अब वज्रदण्ड से भी प्रचंड चोंच से छाती में छेदकर खाने के लिये वेग से उड़ता हूँ।

(झपटकर नायक को उठाता है। नेपथ्य में फूल गिरते हैं। दुंदुभी बजती है।)

गरुड़—(ऊपर देखकर तथा सुनकर आश्चर्य से) ओ ! फूलों की वर्षा तथा दुंदुभियो का निनाद।

क्या अपनी सुगन्ध से भ्रमरों को आनन्दित करने वाली पुष्प

वृष्टि आकाश से हो रही है ? क्या यह दुन्दुभियों का निनाद स्वर्ग में दिशाचक्र को मुखरित कर रहा है ?

[हँसकर]

आः समझ गया। वह पारिजात भी मेरे वेग से चलने की हवा से कांप उठा है। प्रलयकाल की शंका करने वाले प्रलयकालीन सब बादलों की ही यह ध्वनि है ॥२८॥

नायक—(स्वगत) सौभाग्य से कृतार्थ होगा।

गरुड़—(नायक की ओर देखता हुआ) जैसा* यह सर्पों की रक्षा करने वाला मोटा ताजा (गुरु) दिखाई दे रहा है उससे प्रतीत होता है कि आज मेरी सांप खाने इच्छा को यह भली प्रकार दूर (पूर्ण) कर देगा ॥२९॥

अतः इसे लेकर मलयपर्वत पर चढकर (इसे) यथेष्ट भक्षण करूँगा।

[जीमूत वाहन को लेकर प्रस्थान]

[चतुर्थ अक समाप्त]

---

*इस श्लोक से आगामी घटना—जीमूत वाहन के द्वारा गरुड को उपदेश देना—सूचित की गई है।

पंचम अंक

[प्रतीहार का प्रवेश]

प्रतीहार—अपने प्रियजन, (घर) की वाटिका में जाने पर भी प्रेम के कारण पाप (अनिष्ट) की शंका होती है। फिर अनेक प्रत्यक्ष उपायों से तथा भयों से युक्त घने जंगल में जाने पर क्या पूछना है ॥१॥

वैसे ही—समुद्रतट की शोभा को देखने के लिये गये हुए जीमूत वाहन देर कर रहे हैं। इस दुख में महाराज विश्वावसु है। उनके द्वारा मुझे आज्ञा दी गई है। जैसे—"सुनन्द ! मैंने सुना है कि जहाँ गरुड़ का भय निकट है ऐसे प्रदेश में जामाता जीमूतवाहन गया है। मैं इस वृत्तान्त से सशंकित ही हूँ ! अतः शीघ्र पता लगाकर आओ कि वह घर आया या नहीं।" अतः वहाँ जा रहा हूँ। (परिक्रमाकर तथा सामने देखकर) ये राजर्षि जीमूतवाहन के पिता जीमूतकेतु अपने प्रांगण में सहधर्मचारिणी के साथ राजकुमारी (पुत्रवधू) के द्वारा सेवा किये जाते हुए बैठे हैं। वैसे ही—

चुनें पड़े हुए धारीदार किनारे वाले तथा जलफेन की तरह स्वच्छ दो रेशमी वस्त्र धारण किये हुये अच्छे जल युक्त गंगा की तरह अत्यन्त पुण्यवती महारानी से सुशोभित ये जीमूतकेतु नाना प्रकार के (जल) भंगों से युक्त लहराते हुए किनारों से युक्त तथा फेनजल से युक्त जान्हवी से सुशोभित समुद्र के समान शोभा को धारण कर रहे हैं। जिसकी निकटवर्तिनी यह मलयवती वेला (किनारों) की तरह शोभित हो रही है ॥२॥

निकट चलूँ।

[पत्नी तथा पुत्रवधू के साथ जीमूतकेतु का प्रवेश]

जीमूतकेतु—यौवन के सुख भोगे। यश फैलाया ! राज्य किया। स्थिर बुद्धि से तप भी किया। प्रशंसनीय पुत्र है तथा वंशानुकूल यह पुत्र वधू है। कृतार्थ होने के कारण मुझे अब मृत्यु की ही चिन्ता है ॥३॥

सुनन्द—(सहसा निकट जाकर) जीमूत वाहन का—

जीमूतकेतु—(कानों में उँगली डालकर) राम। राम।

वृद्धा—इस अमंगल का नाश हो।

मलयवती—इस दुर्लक्षण से मेरा हृदय कांप रहा है।

जीमूतकेतु—(बांई आँख का फड़कना जानकर) भद्र ! जीमूत वाहन का क्या ?

सुनन्द—जीमूतवाहन का समाचार जानने के लिये महाराज विश्वावसु के द्वारा आपके पास भेजा गया हूँ।

जीमूतकेतु—अवश्य ही हम लोगों की जीविका के लिये वह दूर गया होगा।

मलयवती—(अत्यन्त दुःख से स्वगत) किन्तु मैं आर्यपुत्र को न देखकर कुछ और ही सन्देह में पड़ी हूँ।

जीमूतकेतु—(बांई आँख का फड़कना जानकर) जीमूतवाहन देर कर रहा है। इसलिये मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है।

हे बांई आँख ! बारंबार मेरा अनिष्ट सूचित करती हुई क्यों फड़क रही हो। हे दुष्ट नेत्र ! तुम्हारा फड़कना व्यर्थ है। मेरा पुत्र कुशल है ॥४॥

(ऊपर की ओर देखकर) ये त्रिभुवन को एक आँख से देखने वाले भगवान सहस्र रश्मि अवश्य ही जीमूतवाहन का कल्याण करेंगे।

[देखकर आश्चर्य से]

देखने पर आँखों को अत्यन्त कष्ट देने वाला, अपनी किरणों की कान्ति से लाल वर्षा की शोभा बिखराने वाला, प्रलयकालीन हवा से चंचल किये गये किसी तारा के समान यह सामने आकाश से क्या गिर रहा है ॥५॥

क्या पैरों पर ही गिर पड़ा।

[सब देखते हैं।]

जीमूतकेतु—अरे ! क्या गीले मांस तथा केश से मुक्त चूड़ामणि है किन्तु यह किसका होगा।

वृद्धा—(दुःख से) महाराज। मेरे पुत्र के चूड़ारत्न की तरह ये हैं।

मलयवती—माँ ! ऐसा मत कहो।

सुनन्द—महाराज ! बिना जाने इस प्रकार व्याकुल मत होइये।

यहाँ गरुण के द्वारा खाये जाते हुये सर्पों के इस प्रकार ये अनेक शिरोमणि उल्का के समान गिरते रहते हैं ॥६॥

जीमूतकेतु—देवि। उचित कहता है। कदाचित ऐसा भी हो।

वृद्धा—सुनन्द! अब तक श्वशुर के घर ही पर मेरा पुत्र आ गया होगा। जाओ। जानकर शीघ्र आओ।

सुनन्द—जो महारानी आज्ञा।

[प्रस्थान]

जीमूतकेतु—देवि। (यह) सर्प का चूड़ामणि हो सकता है।

[लाल वस्त्र को लिये शखचूड़ का प्रवेश]

शंखचूड़—(आँखों में आँसू भरकर)

समुद्र तट पर वर्तमान गोकर्ण (भगवान) को शीघ्र प्रणाम कर उस सर्पों की वध्यभूमि पर मैं प्राप्त हो गया (ज्योंही) (उस समय) नख तथा मुख से विक्षत किये गये वक्षस्थल वाले उस विद्याधर को लेकर गरुण आकाश मे उड़ गया ॥७॥

(रोता हुआ) हा महापुरुष! हा अत्यन्त दयालु! हा अकारण एकमात्र मित्र! हा दूसरों के दुख से दुखित होने वाले! कहाँ गये हो। मुझसे बोलो। हा दुष्ट शंखचूड़। तुमने क्या किया।

सर्पों की रक्षाकर, मैंने एक तो कीर्ति भी प्राप्त न की और न स्वामी की प्रशंसनीय आज्ञा का पालन किया। दूसरे ने प्राण देकर मेरी रक्षा की। शोक है। हा कष्ट है। मैं वञ्चित हो गया। वंचित हो गया ॥८॥

मैं इस प्रकार क्षणभर भी जीवित रहकर अपने को उपहसित न करूँगा। अतः इस (जीमूतवाहन) का अनुगमन पीछा करता हूँ। भूमि की ओर दृष्टि लगाए हुए परिक्रमा कर।

प्रथम (वक्षस्थल के) उत्पीडन से विशाल तथा मोरी, तदनन्तर विरल रूप में गिरी हुई, पश्चात् बड़े बड़े बिन्दुओं से उपलक्षित होती हुई, चट्टानों पर गिरने के कारण छिन्न भिन्न होती हुई, जमीन चींटिया लगने से उपलक्षित, गेरु आदि धातुओ की भित्तियो पर (एक रंग होने के कारण) न दिखाई देती हुई, सघन तरु शिखरों से युक्त गुफाओं में अत्यन्त गाढ़ी बनी हुई इस रक्त धारा का अनुसरण करता हुआ मैं गरुड़ को देखने की इच्छा रखकर जा रहा हूँ ॥९॥

वृद्धा—(साध्वस भाव के साथ) महाराज। यह शोक व्याप्त की

तरह रोते हुए मुह को लेकर इधर ही शीघ्र आता हुआ मेरे हृदय को व्याकुल कर रहा है। देखिये यह कौन है ?

जीमूतकेतु—जैसा देवी कहे।

शखचूड—(जोर से रोकर) हा ! तीनों भुवनों का एकमात्र चूडामणि। मुझे अब तुम कहाँ दिखाई दोगे। मै ठग लिया गया, ठग लिया गया।

जीमूतकेतू—(सुनकर हर्ष से मुसकुराकर) देवी ! शोक छोड दो। इसका यह चूड़ामणि अवश्य हा किसी पक्षी के द्वारा मांस लोभ के कारण मस्तक से उखाड कर लाया जाता हुआ इस भूमि पर गिरा था।

वृद्धा—(आनन्द से मलयवती का आलिगन कर) अविधवे। धैर्य धारण करो। इस प्रकार की सुन्दर आकृति कही वैधव्य दुख का अनुभव करती है ?

जीमूतकेतू—(शंखचूड़ के पास जाकर) वत्स क्या तुम्हारा चूडामणि चुराया गया है ?

शखचूड़—आये ! मुझ अकेले का ही नही समस्त त्रिभुवन का।

जीमूतकेतू—(शंखचूड़ की ओर देखकर) वत्स ! कैसे।

शखचूड—अत्यन्त दुख के कारण तथा आँसुओ से गला रुंध जाने के कारण मैं कह नही सकता।

जीमूतकेतू—(स्वगत) हाय ! मर गया। (प्रकट)

पुत्र ! अपना अत्यन्त कठिनता से सहन किया जाने वाला दुख मुझे बता दो। मुझे उसमे से हिस्सा दे देने से तुम्हें वह सह्य हो जायगा ॥१०॥

शंखचूड़—सुनिये ! मैं शखचूड़ नामक नाग हूँ। वासुकि के द्वारा गरुड के पास उसके खाने के लिये भेजा गया था। अधिक कहने से क्या लाभ। कदाचित् यह रुधिर धारा की रेखा धूलिकणों से आच्छादित होकर दुर्लक्ष्य हो जायगी। अतः संक्षेप में कहूँगा।

कारुण्य से परिपूर्ण चित वाले किसी विद्याधर ने अपना शरीर गरुड़ को देकर मेरे प्राण बचाए ॥११॥

जीमूतवाहन—और दूसरा कौन है जिसे दूसरों को हित करने

का व्यसन है। वत्स ! स्पष्ट कह दो कि 'जीमूतवाहन ने।' हा ! मैं अभागा मर गया।

वृद्धा—हा पुत्र ! यह तुमने कैसे किया।

मलयवती—क्या सब दुश्चिन्ताएँ सच हो गई।

[सब मूर्च्छित होते हैं।]

शंखचूड़—(आँखों में आँसू भरकर) अवश्य ही उस महापुरुष के ये दोनों माता पिता हैं। अप्रिय बोलने वाले मैंने इन्हें कैसे इस अवस्था को पहुँचा दिया। अथवा विषधर के मुख से विष छोड़कर और क्या निकलता है। अहो ! प्राण बचाने वाले जीमूतवाहन का शंखचूड़ ने अच्छा प्रत्युपकार किया। क्या अभी अपना आत्मघात कर लूँ। अथवा इन दोनों को सावधान कर लूँ। तात ! सावधान हों अम्ब ! सावधान हों।

[दोनों होश में आते हैं।]

वृद्धा—वत्से ! उठो। मत रोओ। क्या हम लोग जीमूतवाहन के बिना जीवित रहेंगे। सावधान हो जाओ।

मलयवती (होश में आकर) आर्यपुत्र ! तुम कहाँ दिखाई दोगे।

जीमूतवाहन—हाँ वत्स। गुरु चरणों की शुश्रूषा के जानकार।

मेरे चरणों पर चूड़ामणि गिराते हुए तुम ने पर लोक जाने पर भी विनय न छोड़ी ॥१२॥

(चूड़ामणि लेकर) हाँ वत्स ! अब इतने ही (चूड़मणि मात्र) में दर्शन देने वाले तुम कैसे हो गये। (हृदय पर लगा कर) अहह।

भक्ति के कारण मेरे चरणों को प्रणाम करने वाले परलोक में भी नम्र होकर मुख को नीचा कर लेने वाले तुम्हारा यह चूड़ामणि (बारंबार कसौटी पर) घिसा जाने के कारण कोमल होने पर भी मेरे हृदय का कैसे भेद कर रहा है ॥१३॥

वृद्धा—हा पुत्र ! जीमूतवाहन। तुम्हें जिन माता-पिता की शुश्रूषा छोड़कर दूसरा सुख अच्छा नहीं लगता था, उन्हीं तुम इस समय माता-पिता को छोड़कर स्वर्ग सुख का अनुभव करने कैसे चले गये हो ?

जीमूतकेतु—(आँखों में आँसू भर कर) देवि ! क्या जीमूत-वाहन के बिना हम लोग जीवित रह सकेंगे। जो तुम ऐसी विलाप कर रही हो।

मलयवती—(पैरों पर गिरकर तथा अञ्जुलि बाँधकर) आय पुत्र का चिन्ह चूडामणि मुझे दे दो। उसे (चूड़ामणि को) हृदय पर रखकर अग्नि में प्रवेश कर (अपने) हृदय को शान्त करूँगी।

जीमूतकेतु—पतिव्रते ! क्यों इस प्रकार व्याकुल हो रही हो। हम सब लोगों का यहीं निश्चय है ?

वृद्धा—महाराज ! तब हम लोग किस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं ?

जीमूतकेतु—और किसी बात की नही। देवि ! किन्तु अग्नि-होत्रियों का किसी दूसरी अग्नि से संस्कार करने का विधान नहीं है। अतः अग्निशाला से अग्नि लाकर हम लोग (अपने शरीर को) जलाएँ।

शंखचूड़—(स्वगत) हाय ! अकेले मेरे लिये संपूर्ण विद्याधर कुल नष्ट हो गया। अब ऐसा हो। (प्रकट) तात। बिना ठीक जाने इस प्रकार का साहस करना उचित नहीं है। भाग्य खेल विचित्र होते हैं। कदाचित् यह नाग नही है यह देखकर नागशत्रु (गरुड़) (जीमूत वाहन को) छोड दे। अत. इसी दिशा में गरुड का अनुसरण करें।

वृद्धा—अवश्य ही ईश्वर की कृपा से हम लोग जीवित पुत्र का मुख देखें।

मलयवती—(स्वगत) मुझ अभागिनी के लिये यह दुर्लभ है।

जीमूतकेतु—वत्स ! तुम्हारी यह वाणी सच हो। तथापि अग्नि को साथ लेकर ही हम लोगों का अनुसरण करना उचित है। अतः आप अनुसरण करें। हम लोग भी अग्निशाला से अग्नि लेकर शीघ्र आ रहे हैं।

[पत्नी तथा पुत्र-वधू के साथ प्रस्थान]

शंखचूड़—मैं भी गरुड़ का अनुसरण करूँ। (सामने ध्यान से देखकर)

रक्त से भींगी हुई चोंच के (बारंबार) घिसने से पर्वत के प्रान्त भाग को किसी छोटी नाव की तरह बनाता हुआ, अपने नेत्रो की अग्नि ज्वाला से (अपने) दोनो ओर का जंगल जलाता हुआ, (नायक के छाती में) घुसे हुए वज्र का तरह कठोर तथा भयंकर नखो के अग्र

भाग से भूमि को नीचे धँसाता हुआ यह सर्पों का शत्रु मलय पर्वत की चोटी पर दूर से ही दिखाई दे रहा है ।।१४।।

[बैठे हुए गरुड़ का, जिसके आगे नायक गिरा हुआ है प्रवेश]

गरुड़—अपने जन्म से लेकर सर्पों को खाते हुए मैंने यह आश्चर्य कभी न देखा। यहाँ महापुरुष केवल दुखी नहीं होता यही नहीं किन्तु आनन्दित सा दिखाई दे रहा है। जैसे—

इस धैर्य सागर को, जिसका रक्त अधिकाधिक पिया जा रहा है, जरा भी ग्लानि नहीं है। मांस के उत्कर्तन से पीड़ित होता हुआ भी सन्तोष से प्रसन्न मुख है। जो अवयव अभी शेष है वहाँ (हर्ष का लक्षण) रोमांच स्पष्ट दिखाई दे रहा है। मुझ अपकार करने वाले पर भी उपकार करने वाले की तरह आंखों से देख रहा है ।।१५।।

इसकी इस धैर्य वृत्ति से कुतूहल उत्पन्न हो गया है। अस्तु ! अब इसे न खाऊँगा। पूछूँ, यह कौन है। (दूर हटता है)

नायक—(मांस तोड़ने में विमुख देखकर)

अभी तो नसों से रक्त चू ही रहा है। अभी भी मेरे शरीर में मांस है। तुम्हें भी अभी तृप्त हुआ नहीं देख रहा हूँ। हे गरुड़ ! खाने से रुक क्यों गये।

गरुड़—(स्वगत) आश्चर्य है। आश्चर्य है। क्या इस प्रकार की दशा में भी इस प्रकार की उत्साहपूर्ण बातें कह रहा है। (प्रकट) ओ महापुरुष।

मैंने चोंच के द्वारा तुम्हारे हृदय से केवल रक्त ही निकाला, किन्तु तुमने अपने धैर्य से मेरा हृदय ही ले लिया है ।।१६।।

[मैं जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो।]

नायक—इस प्रकार भूख से व्याकुल तुम सुनने योग्य नहीं हो। पहले रक्त मांस से अपनी तृप्ति कर लो।

शंखचूड़—(सहसा आगे बढ़कर) गरुड़। इस प्रकार का साहस मत करना। यह सर्प नहीं है। इसे छोड़ दो। मुझे खाओ। मैं तुम्हारे खाने के लिये वासुकि के द्वारा भेजा गया हूँ। (छाती सामने करता है)

नायक—(शंखचूड़ को देखकर खेद से, स्वगत) कष्ट है। शंख चूड़ने आकर मेरे मनोरथ विफल कर दिये।

गरुड़—(दोनों को ध्यान से देखकर) आप दोनों के पास वध्य-चिह्न है। सर्प कौन है यह नहीं समझ रहा हूँ।

शंखचूड़—तुम्हारा भ्रम ठीक नहीं है।

वक्षस्थल पर दिखाई देने वाला स्वस्तिक चिह्न रहने दो। क्या मेरे शरीर पर केंचुल नहीं दिखाई दे रहा है। बातचीत करते समय तुम्हें मेरी दो जिह्वाएँ भी न गिनो। तीव्र विषाग्नि के धूमपटल के द्वारा मलिनीभूत रत्नप्रभावाली तथा दुराह शोक के कारण सूंसूं करने से उत्पन्न हवा के द्वारा फूली हुई इन फणों को नहीं देख रहे हो ?॥

गरुड़—(दोनों को ध्यान से देखकर शंखचूड़ की फण देखकर) तब मेरे द्वारा कौन मारा गया।

शंखचूड़—विद्याधरों के वंश का तिलक जीमूतवाहन। कैसे निर्दय होकर तुमने यह कार्य किया।

गरुड़— अरे ! क्या यह विद्याधर कुमार जीमूतवाहन है।

मेरु पर्वत पर मन्दर पर्वत की गुफाओं में, हिमालय की चोटियों पर, महेन्द्र नामक पर्वत पर, कैलास पर्वत के शिलातलों पर, मलय-पर्वत की उन्नत चोटियों पर तथा अन्य प्रदेशों में भी लोकालोक पर्वत पर विचरण करने वाले बन्दीजनों के द्वारा गाया जाता हुआ जिसका वह यश मैंने बारंबार सुना है ॥१७॥

अवश्य ही मैं महान पाप पंक में निमग्न हो गया हूँ।

नायक—नाग। क्यों इस प्रकार उद्विग्न हो।

शंखचूड़—क्या यह उद्विग्न होने का स्थान नहीं है ?

अपने शरीर से मेरे इस शरीर को गरुड़ से बचाने वाले आपको पाताल के भी तल में ले जाना उचित नहीं है।

गरुड़—अरे। करुणार्द्र चित्तवाले इस महात्मा ने हमारे खाने के लिए उपस्थित इस सर्प के प्राणों की रक्षा करने के लिये अपना देह (मेरे) खाने के लिये समर्पित कर दिया। मैंने यह महान् अकार्य किया है। क्या अधिक कहूँ। मैंने बोधिसत्व को ही मार डाला। इस महान् पाप का अग्नि प्रवेश करना छोड़कर दूसरा प्रायःश्चित नहीं देख रहा हूँ। अतः आग कहाँ मिलेगी। (सामने देखकर) अरे। अग्नि लिए हुए ये कोई इधर ही आ रहे हैं। इनकी प्रतीक्षा करूँ।

शङ्खचूड़—कुमार तुम्हारे माता पिता आ गये।

नायक—शंखचूड । बैठकर इस उत्तरीय के द्वारा मेरे शरीर को ढाँक कर मुझे पकड़े रहो । अन्यथा कदाचित एकाएक मुझे इस प्रकार देखकर मेरे माता पिता प्राण छो - ड़ेंगे ।

शखचूड—(पीछे पड़े हुये उत्तरीय को उठाकर वैसा करता है ।)

[पत्नी तथा पुत्रवधू के साथ जीमूतकेतु का प्रवेश]

जीमूतकेतु—(आँखों में आँसू भरकर) हा पुत्र जीमूतवाहन ।

दूसरा आत्मीय बन जाता है यही कृपा करने की पद्धति है, यह ठीक है । किन्तु तुन्हें यह चिन्ता कैसे न हुई कि मैं एक (नाग) की रक्षा करूँ अथवा बहुतों (माता पिता पत्नी आदि) की रक्षा करूँ । गरुड से सर्प की रक्षा करने के लिये अपना प्राण त्याग करने वाले तुमने आत्मा, माता-पिता, स्त्री इस प्रकार समस्त कुल को नष्ट कर दिया ।

वृद्धा—(मलयवती के प्रति) जाते । क्षण भर रुको । निरन्तर गिरती हुई वाष्प बिन्दुओं से यह अग्नि शान्त (बुझ) रही है । सब परिक्रमा करते हैं ।

जीमूतकेतू—हा पुत्र जीमूतवाहन ।

गरुड—(सुनकर) "हाँ जीमूतवाहन" यह कहता है । स्पष्ट है कि यह इसका बाप है । क्या इस अग्नि से अपने (शरीर) को जला लूँ । पुत्रघात करने के कारण लज्जा से इसे मुँह नही दिखा सकता । अथवा अग्नि के लिये क्यो व्याकुल हो रहा हूँ । समुद्र के निकट ही हूँ । तब इस समय ।

त्रैलोक्य का ग्रास करने की अभिलाषा से चलायमान काल जिह्वा के अग्रभाग की तरह फैलती हुई ज्वालाओ की लहरो से घी के सात बूँदो की तरह (सातो) समुद्रो को खा जाना चाहता हूँ । अपने ही प्रलयकालीन वायु के प्रवाह से अधिक भयकर पखो का हवा के द्वारा प्रलयकालीन अग्नि के समान भयकर इस वाडवाग्नि मे गिर पड़ूँगा ।

नायक—पक्षिराज ! इस कार्य में मत लगो । इस पाप का यह प्रतीकार नही है ।

गरुड—(घुटनो के बल टेककर तथा अजुलि बाँध र) महात्मन् फिर क्या है । कहिये ।

नायक—क्षणभर रुको ! मेरे माता-पिता आ गये हैं । इनको प्रणाम करता हूँ ।

गुरुड़—ऐसा ही कीजिये ।

जीमूतकेतू—(देखकर हर्ष से) देवि ! बधाई है। यह वत्स जीमूतवाहन केवल जीवित ही नही है अपितु अंजलि-बद्ध गरुड़ के द्वारा शिष्य की तरह सेवा किया जाता हुआ वर्तमान है ।

वृद्धा—महाराज ! कृतार्थ हूँ । मैंने अक्षत शरीर वाले अपने पुत्र का मुँह देखा ।

मलयवती—मैं आर्य पुत्र को देखती हुई भी (आर्य पुत्र का जीवित रहना) असम्भव समझकर विश्वास नही कर रही हूँ ।

जीमूतकेतू—(निकट जाकर) वत्स ! आओ। आओ। मुझे आलिगन करो ।

नायक—(उठना चाहता है । उत्तरीय गिरकर मूर्छित हो जाता है ।)

शंखचूड—कुमार ! सावधान हो । सावधान हो ।

जीमूतकेतू—हा वत्स ! मुझे देखने पर भी छोड़कर चले गये ?

वृद्धा—हा पुत्र ! क्या मैं तुम्हारे द्वारा केवल वाक्यों से भी संभावित नही की जाऊँगी ।

मलयवती—हा आर्यपुत्र ! क्या गुरुजनों को भी नही देखना था ।

[सब मूर्छित होते हैं ।]

शखचूड—हा दुष्ट शंखचूड़ ! गर्भ में ही क्यों न मर गये जिससे इस प्रकार प्रतिक्षण मृत्यु से भी अधिक दुख भोग रहे हो ।

गरुड—यह सब मेरे नर हत्यारी के विचार न करने के कारण हुआ है। इस समय ऐसा करूँ । (पंखों से हवा करता हुआ) महात्मन् सावधान हो ।

नायक—(होश में आकर) शखचूड़ ! गुरुजनों को होश कराओ ।

शंख—तात ! सावधान हो जाओ । सावधान हो जाओ । माँ ! सावधान हो जाओ । सावधान हो जाओ । जीमूतवाहन होश में है ।

क्या तुम लोग नहीं देख रहे हो। आप लोगों को ही धैर्य देने के लिये हम उठ बैठे हैं।

दोनों—(होश मे आते हैं।)

वृद्धा—पुत्र ! क्या हम लोगों के देखते हुए ही तुम दुष्ट काल के द्वारा अपहरण किये जा रहे हो।

जीमूतकेतु—देवि ! इस प्रकार अमगल मत बोलो। अभी आयुष्मान् (पुत्र) जीवित है। वधू को धीरज दो।

वृद्धा—(वस्त्र से मुख ढकती हुई) अमगल नष्ट हो। न रोऊँगी ! मलयवती। सावधान हो। वत्से। उठो, उठो। अच्छा होगा कि इस समय तुम अपने पति का मुँह देखो।

मलयवती—(होश में आकर) हा आर्यपुत्र।

वृद्धा—(मलयवती का मुँह (हाथ से) ढाँपकर) वत्से ! नही। ऐसा मत करो। यह (अमगल) नष्ट हो।

जीमूतकेतु—(आँखों मे आँसू भरकर स्वगत)

शेष अवयवो के नष्ट होने के कारण मानों निराश्रित होकर कंठ देश की ओर जाते हुए प्राणो का त्याग करने वाले पुत्र को देखकर मैं पापी शतधा विदीर्ण क्यों नही हो रहा हूँ।

मलयवती—हा आर्य पुत्र। मैं अत्यन्त कठोर कार्य करने वाली हूँ। जो (मैं) इस प्रकार आर्य पुत्र को देखती हुई अब भी प्राण त्याग नही करती हूँ।

वृद्धा—(नायक के शरीर पर हाथ फेरती हुई गरुड़ के प्रति) नर हत्यारी ! नवीन रूप तथा यौवन की आभा से भरे हुये मेरे पुत्र के शरीर की यह दशा तुमने कैसे की।

नायक—मां ! ऐसा मत कहो। इसने क्या किया। वास्तव में यह शरीर पहले भी ऐसा था। देखो।

मेद, अस्थि, मांस, मज्जा तथा नसों के समूह स्वरूप तथा त्वचा के द्वारा आवृत शरीर में क्या शोभा है। यह सदा बीभत्स दिखाई देने वाला है ॥२४॥

गरुड़—महात्मन्। नरकाग्नि की ज्वाला से भस्म होता हुआ अपने को समझ कर दुखी हो रहा हूँ। मुझे उपदेश करें जिससे मैं इस पाप से मुक्त हो सकूं।

नायक—तात मुझे अनुज्ञा दें जिससे मैं इसके (इस) पाप का प्रायश्चित बताऊँ।

जीमूतकेतू—वत्स। ऐसा करो।

नायक—वैनतेय। सुनो।

गरुड—(घुटने टेककर तथा अञ्जुलि बाँधकर) आज्ञा दें।

नायक—नित्य प्राणियों की हिंसा करने (के कार्य) से रुक जाओ। पहले की हुई (हिंसाओं) के लिये पश्चाताप करो। सब प्राणियों को अभयदान देते हुये प्रयत्न से पुण्य प्रवाह का सञ्चय करो। अत्यन्त दुर्गम तथा गहरे सरोवर में फेंके हुए नमक के टुकड़े की तरह परिमित प्राणियों की हिंसा करने से सञ्चित यह पाप डूब कर (और आगे) न फले ॥२५॥

गरुड़—जो आपकी आज्ञा।

अज्ञान की निद्रा में सोया हुआ तथा आपके द्वारा जगाया गया मैं आज से सभी प्राणियों की हिंसा से विरत (हट) गया हूँ।

इस समय—

कहीं (समुद्र के) किनारों की तरह विशाल शरीरों के द्वारा द्वीप की तरह आकार बनाया हुआ, कहीं अपने शरीर की कुँडली बना देने के कारण भवर का भ्रम उत्पन्न करने वाला तथा कहीं इस किनारे से उस किनारे की ओर जाता हुआ सेतु (पुल) की तरह दिखाई देने वाला सर्प समाज इस विशाल समुद्र में सुख से विहार करे ॥२७॥

और भी—

खुले (अत एव) पैर तक लम्बे तथा अंधकार समूह की तरह काले केश कलापों को धारण करने वाली, सिन्दूर से सुशोभित की तरह प्रातःकालीन सूर्य किरणों के स्पर्श से रक्तिम आभा को धारण करने वाले कपालों से सुशोभित सर्प की स्त्रियाँ परिश्रम के कारण आलस्य युक्त होने पर भी (प्रेम के कारण) कष्ट को न समझने वाली बनकर इस चन्दन के वन में प्रेम से तुम्हारी ही इस कीर्ति का गान करें ॥२८॥

नायक—साधु। महासत्व। साधु। हम लोग अनुमोदन करते हैं। सर्वदा दृढ़चित्त बनो। (शंखचूड के प्रति) शंखचूड़! तुम भी अब अपने घर जाओ।

शङ्खचूड—(उच्छ्वास लेकर मुँह नीचा कर लेता है ।)

नायक—(लम्बी साँस लेकर माता की ओर देखता हुआ)

तुमने गरुड की चोंच के अग्रभाग से फाडा गया सोचती हुई वह तुम्हारी माँ तुम्हारे (मरण) दुख से दुखित है ।

वृद्धा—(आँखो मे आँसू भरकर) वह माता धन्य है जो गरुड के मुख मे पडे हुए (फिर भी) अक्षत शरीर वाले पुत्र का मुख देखेगी ।

शखचूड—माँ यह सच है। यदि कुमार स्वस्थ हो जायँ ।

नायक—(वेदना का अभिनय करता हुआ) अहह ! अब तक परार्थ सपादन रूपी अमृत रस के आस्वादन में लगे होने के कारण अब तक मैंने (वेदनाओं की ओर) ध्यान नही दिया। किन्तु इस समय मर्म-विदारिणी वेदनाएँ मुझे कष्ट देना आरभ कर रही हैं ।

[मरणावस्था का अभिनय करता है ।]

जीमूतकेतु—(घबराकर) हा वत्स ! ऐसा क्या कर रहे हो ।

वृद्धा—हा ! यह क्या हो रहा है । (छाती पीटकर) बचाओ, बचाओ यह मेरा पुत्र मर रहा है ।

मलयवती—हाँ आर्य पुत्र ! दिखाई देता है कि तुम (हम लोगों को) छोडना चाहते हो ।

नायक—(अजुलि बाँधने की इच्छा करता हुआ) शंखचूड ! मेरे दोनो हाथ पास ले आओ ।

शखचूड—(करता हुआ) कष्ट है। संसार को अनाथ कर दिया ।

नायक—(आधी खुली हुई आँखो से माता-पिता की ओर देखता हुआ) तात ! मा ! यह मेरा अन्तिम प्रणाम है ।

ये अवयव चेतनता को धारण नही करते हैं । कान स्पष्टाक्षर तथा स्पष्टपदवाली वाणी को नही सुनते हैं । कष्ट है । यह मेरी आँख बन्द हो गई । हा तात ! मैं विवश हूँ । मेरे ये प्राण जा रहे हैं ॥३०॥

अथवा इस प्रकार कहने से क्या । "आज सर्प की रक्षा करते हुए" आदि कहता है ।

वृद्ध—भगवती की कृपा से।

(दोनों गौरी के पैरों पड़कर नायक को आलिंगन करते हैं।)

मलयवती (हर्ष से) सौभाग्य से आर्य पुत्र जीवित हो गये। (गौरी के पैरो पर गिरती है।)

नायक—(गौरी को देखकर हाथ जोडकर) भगवति।

अभिलाषा से भी अधिक वर देने वाली शरण आये हुए लोगों के दुख को हरण करने वाली। सब के आश्रय स्थानभूत। विद्याधर देवते ! गौरि। तुम्हारे चरणों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३५॥

[गौरी के पैरो पर गिरता है।]

[सब ऊपर देखते हैं।]

जीमूमतकेतु—अरे ! बिना बादलों की वृष्टि कैसी। भगवति। यह क्या है।

गौरी—राजन् जीमूतकेतु। जीमूतवाहन तथा इन अस्थि शेष सर्पों के जिलाने के लिये पश्चात्ताप हुए गरुड़ ने इन्द्रलोल से यह अमृत वर्षा की है। (उँगली से दिखा कर) क्या आप नही देख रहे हैं—

सपूर्ण शरीर को प्राप्त किये हुए, स्पष्ट लक्षित होते हुए फणो की मणियों से सुशोभित होनेवाले मस्तको के कारण दिखाई देते हुए, दोनों जिह्वाओ के अग्र भाग से अमृतरसास्वाद की लालच से जमीन चाटते हुए ये सर्प इस सयय मलय पर्वत से गिरते हुए जल प्रवाह के समान अत्यन्तवेग से टेढ़े मेढ़े मार्गों से समुद्र में घुस रहे हैं ॥३६॥

(नायक को लक्ष्य कर) वत्स ! जीमूतवाहन। तुम केवल प्राण दान देने के ही योग्य नही हो। तुम्हारे लिये यह दूसरा प्रसाद है।

हसो के स्कधो से ताडित सुवर्ण कमलों के पराग सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली पकिलता से रहित मेरे मानस (मन) से उत्पन्न स्वेच्छा निर्मित रत्न के घड़ो में रखे हुए तथा (मेरी इच्छा से) यहाँ प्राप्त परम पवित्र जलसे यह मैं स्वय प्रेम से अभिषेक कर क्षण भर में विद्याधर चक्रवर्ती बना देती हूँ ॥३७॥

और भी,

हे चक्रवर्ती। आगे बढ़ो। यह सुवर्ण का चक्र है। यह चार दातों वाला श्वेत हाथी है। यह श्याम वर्ण का घोडा है। और यह मलयवती है। अपने इन रत्नो को देखो ॥३८॥

और भी—देखो। ये मुझसे प्रेरित होकर (प्रणाम की त्वरा के कारण) चचल चूड़ामणियों की किरणों से इन्द्रधनुष की कतारें बनाने वाले, भक्ति के कारण अपनी पूर्वकाया (मस्तक) नवाए हुए मतग देवादिक विद्याधर पति प्रणाम कर रहे हैं। कहो। और तुम्हारा प्रिय उपकार करूँ।

नायक—(घुटने टेककर) क्या इससे भी अधिक कुछ प्रिय है?

पक्षिराज के मुख से यह शङ्खचूड़ बचा लिया गया। गरुड़ नम्र हो गया। उस (गरुड़) ने पहले जो सर्प खाये थे वे सब जीवित हो गये। मेरे प्राणो की प्राप्ति से गुरुजनो के प्राण नष्ट नही हुए। चक्रवर्तित्व प्राप्त कर लिया और हे देवि साक्षात् तुम्हारा दर्शन कर लिया। अब इससे अधिक क्या प्रिय शेष है जिसकी प्रार्थना की जाय ॥३९॥

फिर भी यह हो। (भरत वाक्य)

प्रसन्न मोरों के ताण्डव नृत्य से युक्त मेघ समय पर वर्षा करें तथा पृथ्वी को उगी हुई सघन हरी हरी घास की चादर से अच्छादित करें। विपत्तियों से रहित प्रजा मत्सरहीन मन से सुकृतों का संचय करती हुई घनी तथा स्थिर बान्धव तथा मित्रगोष्ठियों आनन्द से सुखी रहे ॥४०॥

और भी।

सब जग का कल्याण हो। प्राणी दूसरों के हित में संलग्न हों। दोष (काम क्रोध, मद, मान, पैशुन्य असत्य भाषण, लोभ, अहंकार, नैष्ठुर्य तथा दम्भ) नष्ट हो जॉय तथा सर्वत्र लोग सुखी हों ॥४१॥

[सब का प्रस्थान]

[पंचम अंक समाप्त]

नागानन्द समाप्त

—०:०—

मुद्रक—ला पब्लिशिङ्ग हाउस, एम० एल० खरबन्दा।